धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

# अखण्ड ज्योति

वर्ष—७८, अंक—४ | १२०/- वार्षिक | अप्रैल—२०१४

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

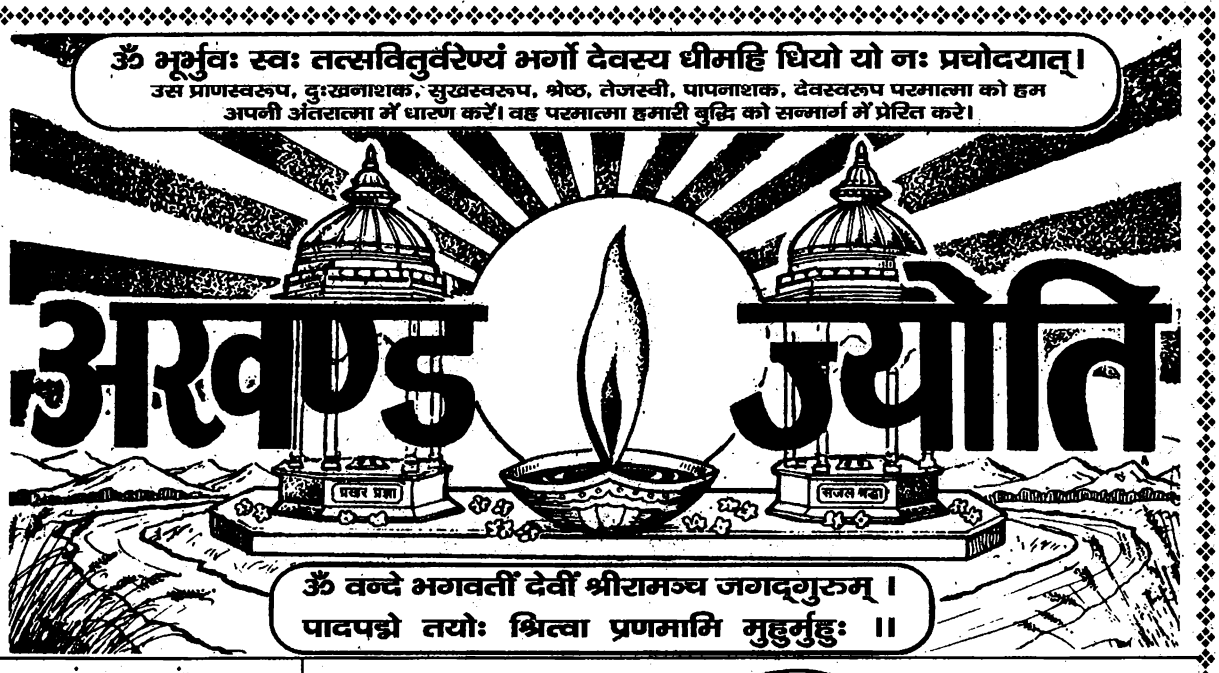


ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
**वेदमूर्ति तपोनिष्ठ**
**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**
एवं
**शक्तिस्वरूपा माता**
**भगवती देवी शर्मा**
संपादक
**डॉ० प्रणव पण्ड्या**
कार्यालय
**अखण्ड ज्योति संस्थान**
**घीयामंडी, मथुरा**

दूरभाष नं०( ०५६५ ) २४०३९४०
२४००८६५
२४०२५७४
मोबाइल नं० ९९२७०८६२९१
फैक्स नं० ( ०५६५ ) २४१२२७३
ईमेल- ajsansthan@awgp.org
**प्रातः ९ से सायं ५ तक**

| | | |
|---|---|---|
| वर्ष | : | ७८ |
| अंक | : | ४ |
| अप्रैल | : | २०१४ |
| चैत्र-वैशाख | : | २०७१ |
| प्रकाशन तिथि | : | १.३.२०१४ |
| वार्षिक चंदा | | |
| भारत में | : | १२०/- |
| विदेश में | : | १२००/- |
| **आजीवन** | : | २४००/- |
| **( सुरक्षा निधि )** | | |

# श्रद्धा

'श्रद्धा' शब्द से सभी सुपरिचित हैं, पर इसके सम्यक अर्थबोध से प्रायः अपरिचित। जिन्हें इसके अर्थ का सम्यक बोध है, वे जानते हैं कि श्रद्धा सद्गुरु से संवाद की कला है। सद्गुरु के कृपापूर्ण अनुदानों की सहज स्वीकारोक्ति है श्रद्धा। भाव, विचार व व्यवहार की ऊर्ध्वमुखी एकाग्रता है श्रद्धा। श्रद्धा के प्रभाव से व्यक्तित्व सुदृढ़, संपूर्ण, समग्र व अखंड बनता है। इसके विपरीत तर्कपूर्ण संशय, व्यक्तित्व को दुर्बल, अपूर्ण व खंडित बना देता है।

इस संबंध में बड़ी मीठी बोधकथा है—सूफी सद्गुरु जलालुद्दीन रूमी की। उनका एक छोटा-सा विद्यालय था, जिसमें उनके अनूठे शिष्य अध्यात्म विद्या का अध्ययन करते थे। ये सभी उनके शिष्य अनूठे इसलिए थे; क्योंकि इन सूफी फकीर का शिष्य बनना अति दुर्लभ कार्य था। एक बार उनके यहाँ दारूल-उलूम के आलिमों की टोली आई। इसे वर्तमान भाषा के शब्द दें तो एक विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसर उनके यहाँ पहुँचे।

यहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा—रूमी के विद्यालय में उनके शिष्यों का समूह पागलों जैसी हरकत कर रहा है। यहाँ पहुँचे इन आलिमों ने इसे देखा और बोले—"लगता है यह आदमी इन सभी को पागलपन की ओर ले जा रहा है।" फिर इनके बीच विवाद शुरू हो गया। उनमें से एक वर्ग ने कहा—"चूँकि हम नहीं जानते कि यहाँ क्या हो रहा है, इसलिए निर्णय देना अच्छा नहीं है।" लेकिन कुछ ने कहा—"हमें इनके पागलपन का आनंद उठाना चाहिए।" इस घटना के कुछ महीने के बाद फिर वही टोली रूमी के यहाँ पहुँची। अबकी बार यहाँ उनके सभी शिष्य मूर्तिवत् बैठे ध्यान कर रहे थे।

इन्हें इस तरह ध्यान करते देख उनमें एक वर्ग ने कहा—"अब इन्हें देखने में कोई आनंद नहीं।" तभी उनमें से कुछ बोले—"लगता है कि ये ध्यान कर रहे हैं।" लेकिन बचे हुए तीसरे वर्ग ने कहा—"हम तो ध्यान के बारे में कुछ नहीं जानते, इसलिए कैसे निर्णय कर सकते हैं।" इस घटना के कुछ महीनों बाद फिर से वही लोग रूमी के यहाँ पहुँचे। अब वहाँ कोई न था। सूफी संत रूमी अकेले बैठे मुस्करा रहे थे। पूछने पर उन्होंने कहा— "जो लोग यहाँ थे, उनकी श्रद्धा ने उन्हें संपूर्ण बना दिया और वे प्रस्थान कर गए। आप सभी यहाँ पर कई बार आए, पर अपने तर्क व संशयों के कारण अभी तक अपूर्ण हैं।"

▶समूह साधना वर्ष◀

# विषय सूची


- श्रद्धा ३
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  लोकतंत्र के महापर्व पर
  करें हम लोकक्रांति का शंखनाद ५
- अंतर्मन की सच्ची पुकार है प्रार्थना ९
- अनीति पर नीति की विजय ११
- साधना का प्रथम सोपान है संयम १३
- **पर्व विशेष**
  मानवीय चरित्र का सर्वोत्कृष्ट आदर्श
  हैं श्रीराम १५
- कहीं काल्पनिक दुनिया में ही न खो जाएँ हम १७
- कामनाएँ न कभी पूर्ण हुई हैं, न होंगी १९
- एकांत में ही होता है रचनात्मकता का उदय २१
- भावना से भक्ति की यात्रा २३
- जीवन जिएँ, सही जीवनदृष्टि के साथ २५
- **आदिशक्ति की लीलाकथा—८४**
  जगन्माता के प्रति जाग्रति
  ही है सर्वोत्कृष्ट साधना २७
- भावुक नहीं, भावनाशील बनें ३०
- घरेलू मसाले धनिया के औषधीय गुण ३२
- **चैत्र नवरात्र पर्व**
  गायत्री महामंत्र से
  आदिशक्ति की पूजा का पर्व ३४
- क्रोध से बचें ३६
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—६०**
  श्रीरुद्राष्टाध्यायी के
  दार्शनिक एवं मांत्रिक रहस्य ३८
- **अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान—३**
  ध्रुवतारे पर संयम से होता है
  नक्षत्रों का ज्ञान ४२
- **श्रीराम भक्ति की साधना—७८**
  मारुति ने किया महादेव का आह्वान ४४
- **युगगीता—१६७**
  समग्र अस्तित्व का
  अखंड रूप हैं श्रीभगवान ४६
- **चेतना की शिखर यात्रा—१३९**
  ममता के संरक्षण में ५०
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—३**
  गायत्री परिवार का उद्देश्य—पीड़ा और
  पतन का निवारण (समापन किस्त) ५३
- **विश्वविद्यालय परिसर से—१०६**
  प्रारंभ हुई विश्वविद्यालय में प्रवेश-प्रक्रिया ५९
- **अपनों से अपनी बात**
  इस संवत्सर में हमारे लिए निर्धारित
  आवश्यक आध्यात्मिक कर्त्तव्य ६३
- शुभ सौंदर्य बोध (कविता) ६६


## आवरण पृष्ठ परिचय

**नवरात्र की वेला में समूह साधना का प्रतीक द्वादशदलीय ऊर्जाचक्र**

## अप्रैल-मई, २०१४ के पर्व-त्योहार

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| मंगलवार | ०८ अप्रैल | श्रीरामनवमी | रविवार | ०४ मई | आदिशंकराचार्य जयंती |
| शुक्रवार | ११ अप्रैल | कामदा एकादशी | सोमवार | ०५ मई | सूर्य षष्ठी |
| रविवार | १३ अप्रैल | महावीर जयंती | बुधवार | ०७ मई | टैगोर जयंती |
| सोमवार | १४ अप्रैल | अंबेडकर जयंती | शनिवार | १० मई | मोहिनी एकादशी |
| मंगलवार | १५ अप्रैल | श्री हनुमान जयंती | मंगलवार | १३ मई | नृसिंह जयंती |
| शुक्रवार | २५ अप्रैल | वरूथिनी एकादशी | बुधवार | १४ मई | बुद्ध पूर्णिमा |
| गुरुवार | ०१ मई | शिवाजी/परशुराम जयंती | शनिवार | २४ मई | अपरा एकादशी |
| | | | बुधवार | २८ मई | वट सावित्री व्रत |
| शुक्रवार | ०२ मई | अक्षय तृतीया | शनिवार | ३१ मई | प्रताप जयंती |

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —संपादक**

▶समूह साधना वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

# लोकतंत्र के महापर्व पर करें हम लोकक्रांति का शंखनाद

## आ गया लोकतंत्र का महापर्व

आम चुनाव यानी कि लोकतंत्र का महापर्व। इस आलेख की पंक्तियों को जब प्रबुद्ध पाठकों की आँखें सजगता से पढ़ रही होंगी, तब इस राष्ट्रव्यापी त्योहार की तैयारियाँ जोरों पर होंगी। नेता व जनता, दोनों में गहमागहमी व उत्साह का अतिरेक आ चुका होगा। ऐसा हो भी क्यों न? आखिर यही तो वह अवसर है, जब स्वतंत्र भारत के नागरिकों को उनके यथार्थ अधिकार प्राप्त होते हैं।

यह बात अलग है कि राष्ट्र के नागरिक अपने इस विशेष अधिकार का, मतदाता होने का, कितना सार्थक व समर्थ उपयोग कर पाते हैं। राजनीति के वर्तमान परिदृश्य में भारी उथल-पुथल है। राजनीतिक पार्टियाँ संशय में हैं, मतदाताओं में अविश्वास है। बातें सभी अच्छी कहते हैं, लेकिन काम के वक्त नदारद हो जाते हैं।

परस्पर की कटुता, आपस की सिर फुटौवल, एकदूसरे पर मनचाहा कीचड़ उछालने की नीति, इन सबसे देशवासी ऊब चुके हैं। पिछले दिनों एक बात जरूर साफ हुई कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की टोपी पर अभी भी जन आस्था बरकरार है, लेकिन इस गांधी टोपी के साथ एकता, समता, शुचिता के अनिवार्य सिद्धांत भी जुड़े हुए हैं।

गांधी टोपी पहनकर इन सिद्धांतों से खिलवाड़ कर कोई अपनी निर्लज्जता का परिचय तो दे सकता है, पर राष्ट्र को ज्यादा समय तक भ्रम, संशय या संदेह में नहीं रख सकता। मतदाता को बार-बार छला जा चुका है, लेकिन अब और नहीं। देश के मतदाता अपने सवालों के जवाब चाहते हैं, अपनी समस्याओं का समाधान चाहते हैं। वे जानना चाहते हैं कि जो उनके दरवाजे पर मत माँगने आए हैं, उनके पास उनकी समस्याओं के समाधान के लिए क्या कार्ययोज़ना है?

## उपहारों के घोषणा पत्र

तमाम राजनीतिक दल ऐसा घोषणा पत्र तैयार करने में अब तक जुटे रहे हैं, जो उन्हें वोट दिला सके। इस काम में बहुत से दलों ने पेशेवर एजेंसियों की मदद भी ली है, जो विभिन्न सर्वेक्षणों के आधार पर लुभावना घोषणा पत्र तैयार करवा सकें। कुल मिलाकर अलग-अलग पार्टियों ने अपने घोषणा पत्रों को तैयार करने में अलग-अलग हथकंडे अपनाए हैं।

हर किसी ने कोशिश की है कि वह अपने आप को देश की जनता के ज्यादा से ज्यादा करीब दिखा सके। देशवासियों की दुखती रग पर हाथ रख सके। उनके घावों पर अपने घोषणा पत्रों का कागजी मरहम लगाने का दावा कर सके। हालाँकि चुनावों के बाद, सत्ता की तसवीर साफ होने के पश्चात इनका मूल्य कितना रह जाता है, इस तथ्य से स्वयं नेता भी परिचित हैं और भुक्तभोगी जनता भी।

## अब समय बदल रहा है

आजादी के बाद से अब तक राजनीतिक दलों ने जितने भी घोषणा पत्र तैयार किए हैं, उनमें एक तत्त्व आधारभूत रहा है, खैरात के बल पर वंचितों का कल्याण करना। पर अब समय बदल रहा है। हालाँकि इस बदलते समय का अंदाज राजनेता व राजनीतिक दल अभी तक लगा नहीं पाए। तभी तो उनमें वोटरों को उपहार देने की प्रवृत्ति वैसी ही है। इन उपहारों में रसोई का सामान, टी.वी., लैपटॉप, साइकिल आदि से लेकर नौकरियों, स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में आरक्षण तक शामिल हैं। इसमें एक नया अध्याय और जुड़ा है, और वह है—अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार तथा विशेष छूट देने का। इस प्रकार की योजनाओं के दम पर पहले राजनेताओं व उनकी पार्टियों को जनादेश मिलता भी रहा है।

हालाँकि इक्कीसवीं सदी के साल-दर-साल बढ़ते कदमों के साथ बदली हुई हकीकत अब यह कहती है कि अब देश का आमजन इस प्रकार के प्रलोभनों में नहीं आ रहा। किसी पढ़े-लिखे युवा मतदाता से मिलिए और उससे बात करिए तो वह यह बताएगा कि उसे क्या चाहिए। उसे गरिमा चाहिए। उसे स्वाभिमान से जीने का अवसर चाहिए। उसे अपना स्थान, अपनी उपयोगिता

चाहिए। वह जिंदगी को अपनी शर्तों पर जीना चाहता है। वह अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति चाहता है, लेकिन इसके लिए वह किसी की खैरात नहीं, बल्कि जी-तोड़ मेहनत करना चाहता है। इक्कीसवीं सदी के इन युवाओं का, उनकी महत्त्वाकांक्षाओं का कोई भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक या आर्थिक दायरा नहीं है। आज के युवा एवं देश के आमजन सूचना क्रांति के दौर के हैं। ये पुराने तौर-तरीकों पर चलने वाले नहीं हैं। इन्हें आसानी से भुलावों-भटकावों में नहीं डाला जा सकता।

## यह विचारशीलों का जमाना है

बात केवल युवाओं तक सीमित नहीं है। देश की आम जनता जिसमें सभी वर्ग शामिल हैं, इनकी विचारशीलता बढ़ी है। इनमें स्थानीय समस्याओं के साथ राष्ट्रीय समस्याओं की आर्थिक-औद्योगिक समझ बढ़ी है। अब गाँव की गलियों, चौपालों में बैठे हुए लोग भी अन्य देशों के साथ अपने देश के संबंध तथा उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं पर विचार करने लगे हैं। हाँ! यह सच है कि लोगों का ध्यान अपनी निजी व स्थानीय समस्याओं पर ज्यादा रहता है, लेकिन वे अपनी क्षेत्रीय व राष्ट्रीय भागीदारी के भी हिमायती हैं। आज के परिदृश्य में कोई भी राजनेता अथवा राजनीतिक दल अपने घोषणा पत्र को मतदाता के सिर पर थोप नहीं सकता।

आज देश के व्यापक परिदृश्य एवं मतदाता में आई जाग्रति को देखकर इन पंक्तियों के लेखक की सोच है कि घोषणा पत्र केवल राजनेता एवं राजनीतिक दल ही क्यों तैयार करें? यह उन्हीं का विशेषाधिकार क्यों बना रहे?

## मतदाताओं का घोषणा पत्र

जनता का, मतदाता का भी अपना घोषणा पत्र होना चाहिए, जिसके माध्यम से वह विचार करेगा कि संबंधित पार्टी का आगामी १०० दिनों का कार्यक्रम क्या है? इसके अलावा इसमें यह भी परखा जाएगा कि क्या आगामी सरकार मैन्युफैक्चरिंग इकाइयों, सड़कों, बंदरगाहों, हवाई अड्डों, बिजली स्टेशनों, पीने के पानी, स्वच्छता, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय आदि के माध्यम से देश के मतदाता को स्वावलंबी, स्वाभिमानी बनाने तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में प्रभावकारी होगी? देश को विकास की पटरी पर लौटाने के लिए उसकी योजनाएँ एवं इनकी क्रियान्वयन प्रणाली क्या है? देशवासी अपने इस घोषणा पत्र के माध्यम से संबंधित नेता या राजनीतिक दल से यह भी जानना चाहेगा कि कितनी संख्या और कितने किलोमीटर सड़कों का निर्माण होगा? कितनी नई रेलवे लाइनें बिछाई जाएँगी? कितने रोजगारों का सृजन किया जाएगा?

इसी के साथ इसमें यह भी तय होगा कि जनता पर टैक्स का बोझ न बढ़े और गरीबों को महँगाई की मार न झेलनी पड़े। इसके लिए प्रति तिमाही आर्थिक विकास के साथ महँगाई की भी समीक्षा होनी चाहिए। देश का मतदाता अपने घोषणा पत्र में आने वाली सरकार से यह भी चाहेगा कि वह देश भर के विभिन्न समुदायों के बीच शांति और सामंजस्य को सुनिश्चित करे। भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए हर संभव ठोस कदम उठाने की अनिवार्य व कारगर व्यवस्था हो।

## क्या चाहेगा जनता का घोषणा पत्र?

मतदाता प्रत्याशी व उसकी पार्टी से यह भी जानना चाहता है कि देश के पड़ोसियों से शांति व सहयोग कायम करने के लिए उसकी योजना क्या है? सरकार कोई भी बनाए, लेकिन परस्पर सम्मान के साथ विश्व के अन्य देशों के साथ रिश्ते मजबूत किए जाएँ। कोई भी देश हमारे किसी सम्माननीय नेता, गणमान्य अथवा किसी राजनयिक महिला के साथ बदसलूकी का व्यवहार न करे। देश के नागरिक अब सरकारों से स्पष्ट वचन चाहते हैं कि वे आम लोगों की भावनाओं का ख्याल रखें और उनके साथ समानता का व्यवहार सुनिश्चित करें।

संविधान में उल्लेखित इस भावना का ख्याल रखा जाना चाहिए कि सभी को, जिसमें बच्चे, किशोरियाँ, युवक, युवतियाँ सभी धर्म व समाज के सभी वर्ग सम्मिलित हैं, उन्हें जीवन की पूर्ण सुरक्षा के साथ आजादी मिले। प्रत्याशी व पार्टी, दोनों को चाहिए कि वह चुनाव में लोगों को बहकाने के बजाय, सुशासन की बात उठाएँ। यह भी तय किया जाना चाहिए कि आने वाली सरकार की स्थिरता उसके काम के आधार पर हो, न कि राजनीतिक षड्यंत्रों एवं जाँच एजेन्सियों के दुरुपयोग के आधार पर। सरकार जो भी बने, वह आम लोगों के हित के लिए काम करे, न कि अपने निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए। यह बात साफ तौर पर समझी जानी चाहिए कि नेतृत्व त्याग पर आधारित होता है, न कि स्वयं को अधिक से अधिक शक्तिसंपन्न बनाने के लिए।

**जो नेतृत्व करे, वह यह ध्यान रखे**

नेतृत्व जो भी करें उन्हें बड़ी स्पष्टता के साथ यह सोचना चाहिए कि वे करोड़ों देशवासियों को एक जुट रखने के साथ देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए कोई भी त्याग-बलिदान करने का साहस व सामर्थ्य जुटाएँगे। आखिरकार स्वाधीनता सेनानियों ने भी तो बिना किसी अपेक्षा के अपना जीवन इसलिए बलिदान किया, ताकि हमें विदेशी दासता से मुक्ति मिल सके।

प्रत्याशी व पार्टियों को चाहिए कि वे देश के मतदाता की इन घोषणाओं को ध्यान से पढ़ें व विचार करें। इसी के साथ अपने घोषणा पत्रों में किए वादों की उपलब्धि को लेकर प्रतिमाह समीक्षा रिपोर्ट जनता के समक्ष रखें। देश का मतदाता यह भी चाहता है कि चुनी जाने वाली सरकार यदि शुरू के ३६५ दिनों में अपने वादों एवं इन जन आकांक्षाओं को पूरा करने में नाकाम रहती है तो उसे त्यागपत्र दे देना चाहिए।

**देश के असली मुद्दे हैं—एकता, समता व शुचिता**

मतदाता हो या राजनेता, दोनों को यह समझना होगा कि देश के असली मुद्दे एकता, समता व शुचिता ही हैं। इसकी विवेचना करते हुए इस संदर्भ में कहना यह भी है कि प्रत्याशी व पार्टी पर सारी जिम्मेदारी डालकर मतदाता अपने कर्त्तव्य से भाग नहीं सकता। हम मतदाताओं को अपने आप से यह सवाल पूछना माकूल नहीं होगा कि देश की राजनीति गंदी है, तो इसके दोषी क्या सिर्फ राजनेता हैं? क्या इन्हें चुनने वाले हम मतदाताओं का कोई दोष नहीं है? हममें से कितने मतदाता हैं, जो पाँच साल के दौरान अपने चुने हुए जनप्रतिनिधि से उसे मिले बजट का हिसाब पूछते हैं? कितने हैं, जो सार्वजनिक हित के वादों को पूरा करने के लिए जनप्रतिनिधि को समय-समय पर टोकते हैं? कितने मतदाता सार्वजनिक हित के काम में उसे सहयोग देने के लिए खुद आगे आते हैं?

हममें से किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि जहाँ सवाल पूछे जाते हैं, जवाबदेही भी वहीं आती है। यह सवाल पूछने की प्रक्रिया और तेज होनी चाहिए। इसलिए हम यह तो अवश्य याद रखें कि मतदान हमारा अधिकार है, किंतु कर्त्तव्य को न भूल जाएँ। जाति, धर्म, वर्ग, पार्टी, लोभ अथवा व्यक्तिगत संबंधों के बजाय उम्मीदवार की नीयत, काबिलियत, चिंता, चिंतन, चरित्र तथा उसके द्वारा अब तक किए गए कार्य को आधार व उसकी भावी कार्ययोजना के आधार पर ही मतदान दें।

**मात्र मतदान ही हमारा कर्त्तव्य नहीं**

लोकतंत्र के इस महापर्व यानी कि आम चुनाव को भरपूर खुशी व उमंग से मनाएँ, लेकिन यह भी याद रखें कि केवल मतदान कर देना ही लोकतंत्र के निर्माण में हमारी एकमात्र भूमिका नहीं है। एक मतदाता के रूप में लोकतंत्र के निर्माण में सहभागिता के लिए जगाने की अवधि सिर्फ वोट का एक दिन नहीं, पूरे पाँच साल है, अर्थात एक चुनाव से दूसरे चुनाव तक।

सच यह है कि मतदाता ही प्रत्याशी व पार्टी दोनों को इस सचाई से वाकिफ करा सकते हैं कि चुनाव न तो हार-जीत का मौका होता है और न कोई युद्ध है। चुनाव तो मौका है—पिछले पाँच साल में जनप्रतिनिधि द्वारा किए कार्य व व्यवहार के आकलन का। चुनाव मौका होता है—अगले पाँच साल के लिए अपने विकास व विधान की दिशा तय करने का।

यह तभी हो सकता है; जबकि हम मतदाता मतदान के बाद सो न जाएँ। लगातार पाँच साल खुद जागकर जन प्रतिनिधि को जगाते रहें। जनप्रतिनिधि से लगातार संवाद कर जनमत के अनुरूप दायित्व निर्वाह के लिए विवश करें। राष्ट्र स्तर पर नीतिगत निर्णय के लिए सांसद को और राज्य स्तर पर हितकारी विधान निर्माण के लिए विधायक को प्रेरित करें। निगम-पार्षद को विवश करें कि वह इलाके का विकास नागरिकों की योजना व जरूरत के अनुसार करे। ग्राम पंचायत के निर्णयों में ग्राम सभा व ग्रामीणों का साझा सपना झलकना ही चाहिए।

देश के मतदाता को यह बात हमेशा याद रखनी होगी कि हम जनप्रतिनिधि के कार्य का आकलन तभी कर सकते हैं, जब हमारे लिए बनी योजनाओं की जानकारी हमें खुद हो। मतदाता उसका सफल क्रियान्वयन सुनिश्चित करे और कराए। उनके प्रयोग, उपयोग के साथ दुरुपयोग व प्रभावों की कड़ी निगरानी रखे। सरकारी योजनाओं के जरिए हम सब पर किए जाने वाले खरच की हर पाई का हिसाब माँगे। ग्रामसभा का सदस्य हो या संसद का सदस्य, उसे चुनना भी हमें है और उस पर नियंत्रण भी हमें ही रखना है। ध्यान रहे मतदाता मालिक है और उसके द्वारा चुने जाने वाले प्रत्याशी चौकीदार। यदि मालिक यों ही सोता

रहा तो चौकीदार तो चोरी करेंगे ही। ग्रामीण स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर विकास की तसवीर को बदलने के लिए मतदाताओं को जागते ही रहना पड़ेगा।

## विकास का ब्लूप्रिंट

देश के मतदाता प्रत्याशी व पार्टियों को इस बात के लिए प्रेरित करें, उन पर जरूरी दबाव भी बनाएँ कि वे विद्वानों, सामाजिक संगठनों के साथ मिलकर एक क्षेत्र/एक राज्य/पूरे देश के लिए आपसी सहमति से विकास का रोड मैप तैयार करें। आपसी चिंतन एवं बातचीत से जो निष्कर्ष निकले, वही विकास का परम ब्लूप्रिंट माना जाए। इसमें आम आदमी की प्राथमिकताओं से लेकर राज्य व देश की आर्थिक नीतियों और मूल विकास के सारे कार्यक्रमों का ब्योरा हो। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू इसकी सामूहिक भागीदारी से होगा, जिसमें सभी वर्गों के विशेषज्ञ हिस्सा लें। इस तरह जो भी विकास की रूपरेखा बने, वह सभी को अनिवार्यता से मान्य हो। आने वाली सरकार जिसकी भी हो, वह इसी के अनुरूप कार्य करे।

इसी के आधार पर राजनीतिक दलों का आकलन हो। आखिर राजनीतिक दलों को आँकने का कोई सूचकांक क्यों नहीं होना चाहिए? यदि इस तरह का कोई सूचकांक आपसी सहमति से तय हो जाए, तो मतदाता राजनीतिक दलों एवं प्रत्याशियों का आकलन आसानी से कर सकेंगे। राजनीति में अच्छे-बुरे के लिए कोई मान्य परिभाषा अभी तक तय नहीं हो पाई है। इसे तय करने की जिम्मेदारी भी देश के मतदाता की है। यह ठीक है कि हम मतदाताओं ने जागना शुरू कर दिया है, लेकिन अभी थोड़ा और जागना होगा। किसी के काम को, व्यक्तित्व को, उसकी पहचान मानें। राजनेता चुनना बंद करें, लोकनेता चुनना शुरू करें।

साथ ही हम मतदाता खुद अपनी अपेक्षाओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर अपना लोक घोषणा पत्र तैयार करें, जिसमें हमारी सबकी विचारशीलताओं का खाका स्पष्ट रूप से उभर कर आए। इसके महत्त्वपूर्ण बिंदुओं की चर्चा इस आलेख में की जा चुकी है। अपने क्षेत्र के उम्मीदवार एवं पार्टियों को बुलाकर इसे उनके समक्ष पेश करें। उनसे संकल्प लें और जीतकर आए जनप्रतिनिधि को उसके संकल्प पर खरे उतरने के लिए विवश करें। इतना ही नहीं उसके संकल्प पूर्ति में अपना सामूहिक योगदान भी दें।

## सकारात्मक, सजग व संगठित हो मतदाता

इसे संभव करने के लिए देश के मतदाताओं को सकारात्मक, समझदार, सजग व संगठित होना पड़ेगा। विभिन्न सामाजिक संगठन देशव्यापी स्तर पर मतदाता परिषदों का गठन कर यह काम कर सकते हैं। लोकतंत्र में राजतंत्र की मानसिकता को बाहर करने का यही रास्ता है। देश में जो राजनीतिक जागरूकता बढ़ रही है, उसके चलते आज यह कार्य असंभव नहीं लग रहा है। इसे चुनावी त्योहार के दिनों में किया जाना चाहिए।

गौर करने की बात यह है कि राजनीतिक जागरूकता भारत के साथ अरब एवं मध्य तथा पश्चिम एशियाई समाज में भी उभरी है। होस्नी मुबारक से परेशान मिस्र के लोगों ने पहले तो भ्रष्टाचार व बेरोजगारी के खिलाफ 'अरब वसंत' नाम की क्रांति करके काइरो की सत्ता मुहम्मद मुर्सी को सौंपी थी, लेकिन दो साल पूरे न होने पाए और वही जनता उन्हीं मुर्सी के खिलाफ उठ खड़ी हुई, जिनको उसने सत्ता सौंपी थी।

तुर्की की अवाम अपने लोकप्रिय नेता व प्रधानमंत्री के विरुद्ध लामबंद हो गई। बात केवल इतनी थी कि वहाँ के प्रधानमंत्री ने तुर्की के हरे-भरे गेजी पार्क को शापिंग मॉल में बदलने का फैसला लिया। तुर्की सरकार का यह फैसला लोगों के गले नहीं उतरा। बात सोचने की है कि यदि सन् १९०८ में जापान जैसे छोटे से राष्ट्र द्वारा रूस जैसे बड़े व शक्तिशाली राष्ट्र को परास्त करने की खबर ने सारे गुलाम देशों के खून में एक बिजली दौड़ा दी, तो क्या आज सोशल मीडिया के इस तीव्र एवं नियंत्रण रहित युग में देश के चुनावी त्योहार को चुनावी क्रांति में नहीं बदला जा सकता।

लोकतंत्र का महापर्व देश व देशवासियों की जाग्रति से लोकक्रांति का शंखनाद करे, तभी सार्थकता है। पिछले विधान सभा के चुनाव हों या देश के मतदाता की जागरूकता, काल-प्रवाह हो या फिर महाकाल के तेवर? कुल मिलाकर अहम मुद्दा यह है कि अब एक मौन, लेकिन मुखर विचार क्रांति ने यात्रा के लिए अपने कदम बढ़ा लिए हैं। भविष्य उसी का होगा, जो महाकाल के इस युग प्रत्यावर्तन के संदेश को सुन पाएगा। लोकतंत्र के इस महापर्व के शोरगुल थमने के बाद शायद सभी को इस अनूठी, अनोखी, किंतु महाकाल द्वारा प्रेरित मौन पर साथ ही मुखर व व्यापक विचार क्रांति के परिणाम देखने को मिल जाएँ।

# अंतर्मन की सच्ची पुकार है प्रार्थना

प्रार्थना एक पुकार है, जिसके माध्यम से हम अपनी भावनाओं को भगवान के पास भेजते हैं। जब भी मनुष्य किसी संकट में होता है, परेशानी में होता है तो प्रार्थना स्वत: ही उसके अंतर्मन से निकलती है और इस प्रार्थना में दरद होता है कि उसे इस परिस्थिति से किसी प्रकार बाहर निकाल लिया जाए। यह जरूरी नहीं कि केवल कष्ट में ही भगवान से प्रार्थना की जाए। यह तो किसी भी परिस्थिति में की जा सकती है। आत्मकल्याण के लिए, लोककल्याण के लिए प्रार्थना किसी भी समय, कभी भी की जा सकती है, लेकिन इसमें जरूरी बात यह है कि हमारी प्रार्थना की पुकार भगवान तक पहुँचे।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने जीवन में यदि किसी चीज को अनिवार्य रूप से शामिल किया था तो वह प्रार्थना थी। वह प्रतिदिन प्रार्थना किया करते थे और लंबे उपवास करते थे। उनका कहना था कि उपवास करने से शरीर व मन शुद्ध होता है और प्रार्थना करने में मन लगता है, प्रार्थना में रस आता है। निश्चित रूप से प्रार्थना व उपवास में एक गहरा संबंध है। उपवास के दौरान जो प्रार्थना की जाती है, वह अधिक शीघ्रता के साथ भगवान तक पहुँचती है। इसलिए भारतीय संस्कृति में व्रत-उपवास को बहुत महत्त्व दिया गया है।

श्रीकृष्णभक्त मीरा का जीवन भी प्रार्थना का स्रोत था। वे भी पद-कविताओं के माध्यम से अपने अंतस् की पुकार को भगवान के पास निरंतर भेजती थीं। भले ही मीरा का निवास स्थान महलों में रहा हो, लेकिन उनका जीवन कष्ट-कठिनाइओं से भरा हुआ था, जीवन में किसी तरह का कोई सुख नहीं था। उनके परिजन उनसे एक-एक करके बिछड़ते ही चले गए और जो बचे, वे परिजन नहीं, शत्रु के समान हो गए थे और उन्हें अपमानित करने व मारने के लिए अवसर तलाशते रहते थे। अपनी पीड़ा और करुण कथा वे किससे कहतीं, जो उनकी सुनता और उस पीड़ा को कम करता। ऐसे समय में वे केवल और केवल भगवान को निरंतर पुकारती थीं और भगवान भी उनकी पुकार सदैव सुनते थे।

कुछ ऐसा ही जीवन भक्त प्रह्लाद का था। प्रह्लाद राजकुमार था, लेकिन उसके मन में भक्ति का बीज अंकुरित हो गया था, जो उसके पिता हिरण्यकशिपु को स्वीकार्य नहीं था। पिता हिरण्यकशिपु असुरों का राजा था और स्वयं को भगवान मानता था। उसके राज्य में सभी उसकी पूजा करते थे, लेकिन भक्त प्रह्लाद 'श्रीहरि' का निरंतर ध्यान करता था। उसकी भक्ति अविरल प्रवाहित रहती थी और इस भक्ति में बहकर भगवान भी हर पल उसके साथ रहते थे।

प्रह्लाद को मारने के लिए कई तरह के प्रयास उसके पिता राजा हिरण्यकशिपु और गुरु शुक्राचार्य के द्वारा किए गए। इस प्रयास में एक ओर प्रह्लाद की भक्ति थी तो दूसरी ओर राजकीय शक्ति व गुरु शुक्राचार्य की तंत्र व ज्ञान-विज्ञान की महान शक्ति थी, लेकिन हर बार भक्ति के समक्ष, शक्ति पराजित हुई। प्रह्लाद का बाल-बाँका भी नहीं हुआ। जब सब तरह के प्रयास असफल होने लगे तो होलिका जो प्रह्लाद की बुआ थी, उसे लेकर अग्नि में यह सोचकर बैठ गई कि मुझे तो अग्नि में न जलने का वरदान प्राप्त है, लेकिन उस परिस्थिति में भी होलिका जल गई और प्रह्लाद बच गया। इस तरह प्रह्लाद को मारने के लिए किए गए हर प्रयास में शक्ति पराजित होती गई और भक्ति विजय को प्राप्त हुई और अंत में स्वयं को सर्वशक्तिमान समझने वाले हिरण्यकशिपु का ही अंत हो गया।

निश्चित रूप से प्रार्थना में बड़ी शक्ति होती है, जो किसी भी असंभव दीखने वाली परिस्थिति से हमें बाहर निकालती है। ऐसा नहीं कि भगवान अच्छे लोगों की बात सुनता है, बुरे लोगों की नहीं। भगवान के समक्ष अच्छे व बुरे लोगों के प्रति कोई भेदभाव नहीं है। भगवान् यदि किसी की बात सुनता है, प्रार्थना सुनता है तो वह है सच्चे लोगों की। भगवान को एकमात्र छल-कपट से परहेज है। इसलिए रामचरितमानस में यह पंक्ति है— **'निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट-छल छिद्र न भावा'**। भगवान को तो मात्र निष्कपट और

सरल हृदय मनुष्य ही प्रिय हैं और इन्हीं में भगवान का वास होता है। इनका मन ही भगवान का डाकघर है, जो सीधे भगवान तक संदेश पहुँचाता है।

हमारे विश्व के सभी धर्मों में एकमात्र जो समानता है, वह है—'प्रार्थना'। हर धर्म किसी न किसी रूप में भगवान से प्रार्थना करने के लिए कहता है। चाहे उस प्रार्थना का स्वरूप किसी भी रूप में हो। इसलिए भगवान से जुड़ने के लिए प्रार्थना को अपने जीवन में अनिवार्य रूप से शामिल करना चाहिए। प्रार्थना भगवान से कही गई अपने अंतर्मन की पुकार है। यह एक ऐसी वार्ता है, जो एकतरफा होती है, लेकिन इसके सकारात्मक परिणाम जीवन में दृष्टिगोचर होते हैं। प्रार्थना भगवान से अपनी इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि यह तो भगवान के साथ अपनी करुण वेदना की सहभागिता है। इसलिए जब कभी मदद व सहायता के सारे द्वार बंद हो जाते हैं, कोई भी मार्ग सूझता नहीं है, तब भी प्रार्थना का द्वार खुला रहता है।

प्रार्थना के चमत्कारिक परिणामों से दुनिया परिचित है, लेकिन कई बार ऐसा भी देखा गया है कि प्रार्थना करने से तुरंत कोई लाभ नहीं हुआ, बहुत सारे उपाय भी व्यर्थ गए हैं और व्यक्ति हताश हुआ, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि भगवान के प्रति की गई प्रार्थना व्यर्थ हुई, प्रार्थना व्यर्थ कभी नहीं होती; क्योंकि इसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन की नकारात्मक परिस्थितियों में सकारात्मकता से जुड़ता है, अंधकार से घिरने पर प्रकाश की ओर निहारने का प्रयास करता है, ऐसा करने मात्र से उसके जीवन में उम्मीद का दीया जलता है, जो उसे ढाढस बँधाता है।

कभी-कभी हमारे जीवन की ऐसी नियति होती है कि उसके आगे सबको विवश होना पड़ता है, उन कठिनतम परिस्थितियों को स्वीकारना होता है और उस समय की गई प्रार्थनाएँ भी बेअसर होती प्रतीत होती हैं, लेकिन यह पूर्णतया सच नहीं है। हमारे जीवन में जो अनहोनी घटित होने वाली होती है, वह तो हो जाती है लेकिन उस परिस्थिति में भी जो अधिकतम अच्छा हो सकता है, वह प्रार्थना के माध्यम से होता है। इसलिए किसी भी परिस्थिति में मार्गदर्शन के लिए, सहायता के लिए भगवान से प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए।

प्रार्थना यदि सच्चे मन से की जाए तो वह अवश्य अपना प्रतिफल देती है, लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि प्रार्थना के साथ व्यक्ति व समाज का हित जुड़ा हो, जिस प्रार्थना के साथ व्यक्ति व समष्टि का अहित समाहित हो, वह प्रार्थना है ही नहीं। प्रार्थना व्यक्ति के लिए सुरक्षाकवच का कार्य करती है, हानि पहुँचाने का नहीं। प्रार्थना भगवान की सत्ता से जुड़ने का एक सरल मार्ग है, जिसे कर पाना सभी के लिए संभव है।

प्रार्थना के माध्यम से हम भगवान से अपनी इच्छाओं, भावनाओं व विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं, अभिव्यक्ति का यह माध्यम हमारी मनोचिकित्सा का भी कार्य करता है, हमारे मन को जीवन में पड़ने वाले अनगिनत भँवरों से बाहर निकालता है। इसलिए अपने जीवन में भगवान को पुकारिए, उनसे प्रार्थना कीजिए। सच्चे मन से की गई पुकार न केवल मनुष्य को घोर संकटों-आपदाओं से निकालती है, वरन उसे उस दिव्य सत्ता के साथ भी जोड़ती है, जिससे प्राप्त अनुदान उसके जीवन में सात्त्विकता ही समाविष्ट करते हैं। ❀

**पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा को एक कुरूप व बेडौल पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे देख कर सभी घरवाले खिन्न हो गए। बालक कुबेर जब बड़ा हुआ तो उसे अपनी ये उपेक्षा सहन नहीं हुई। उसने अपनी योग्यता बढ़ाने का निश्चय किया। वह कठोर तप द्वारा धनाधीश लोकपाल बनकर अलकापुरी में राज्य करने लगा। जो लोग पहले कुबेर का उपहास करते थे, उन्हें कुबेर के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। रूप की अपेक्षा गुणों को महत्त्व दिया जाना चाहिए। अपने पुरुषार्थ से अपनी योग्यता का सतत अभिवर्द्धन करते रहना चाहिए।**

# अनीति पर नीति की विजय

रणजीत सिंह की एक आदत थी कि वे अपने प्रतिद्वंद्वियों को सदा के लिए समाप्त कर देते थे। सत्ता, शासन और संपदा की मृगतृष्णा को शांत करने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते थे। अपनी इसी आदत और रणनीति के तहत उन्होंने अपार संपदा, राजसी ठाठ-बाट, शानोशौकत और राजनीतिक क्षेत्र में ऊँचा ओहदा प्राप्त कर लिया था। उनके वैभव और रुतबे का प्रत्यक्ष उदाहरण था—उनका आलीशान बँगला और सेवा में मुस्तैद खड़े सैंकड़ों लोग। एक दबंग राजनेता के रूप में उनका दबदबा क्षेत्र में चारों ओर फैला था। ऐसे में भला अहंकार और संपदा के मद से वे कैसे बच सकते थे? और आज तो हद ही हो गई थी। किसी अदने से भले आदमी ने उनके अहंकार को चुनौती दी थी। अब वे शांत कैसे बैठ सकते थे। ना सुनना तो उनकी आदत में था ही नहीं।

रणजीत सिंह के भीतर का आवेश उनके समक्ष खड़े सेवादारों पर फूट पड़ा था। वे कह रहे थे—"तुम लोग इतने निकम्मे कैसे हो गए? एक स्कूल मास्टर की झोंपड़ी को नहीं हटा पाए और उस झोंपड़ी के पास के पीपल के पेड़ को भी काट नहीं पाए। इधर हमारा अरबों रुपयों का प्रोजेक्ट अधर में लटका हुआ है। प्रतिदिन लाखों रुपये का नुकसान हो रहा है। जाओ! कुछ भी करो, स्कूल मास्टर की हत्या तक करना पड़े तो भी कर डालो।"

रणजीत सिंह के एक मित्र ने समझाते हुए कहा—"रणजीत! मामला काफी उछल चुका है। विरोधी लोग भी इसे मुद्दा बना रहे हैं। ऐसे में स्कूल मास्टर के प्रति कुछ भी सख्ती आपके राजनीतिक जीवन के लिए नुकसानदेह साबित हो सकती है।" अहंकारी रणजीत सिंह को किसी भी बात के लिए ना पसंद नहीं थी। वे उसे बरदाश्त नहीं कर सकते थे। जिसने भी उनके सामने इनकार करने की कोशिश की, उसे मिटा दिया गया। रणजीत सिंह की आँखों में हैवानियत तैरने लगी। उनकी आँखें लाल हो गईं। वे बोले—"स्कूल मास्टर से हम आज ही मिलना चाहते हैं। आज ही उसे हमारे सामने पेश किया जाए। वह न आए तो हमारे सामने उसे उठाकर ले आओ।"

रणजीत के मित्र ने कहा—"स्कूल मास्टर उसूल के पक्के हैं। उन्हें जीने-मरने की परवाह नहीं है। उनके आगे-पीछे भी कोई नहीं है। एक बेटी थी, जो जवानी में ही स्वर्ग सिधार गई है। अब वे अकेले ही गाँव की उस झोंपड़ी में रहते हैं और पीपल के पेड़ के नीचे झुग्गी-झोंपड़ी के गरीब बच्चों को शिक्षा देते हैं। उनके पढ़ने का सारा खरच भी वहन करते हैं। गाँववाले उन्हें भगवान के समान मानते हैं। आतंकित करके आपने गाँववालों को तो हटा दिया है, पर मास्टर साहब वहाँ अकेले रहते हैं। अब भी बच्चे बेखौफ होकर उनके पास पढ़ने आते हैं।" उन्होंने आगे कहा—"मित्र! उनसे मिलने के लिए हम लोगों को उनके पास जाना चाहिए।" रणजीत सिंह ने कहा—"ठीक है! चलो उनसे मिलने चलते हैं, पर आज मैं आर या पार करके रहूँगा।"

मास्टर साहब शाम को संध्यावंदन कर रहे थे। उनकी स्वच्छ एवं सुंदर कुटिया के बाहर रणजीत सिंह एवं उनके मित्र तथा हुड़दंगी भीड़ इकट्ठी हो गई थी और कुछ लोग रणजीत सिंह की जय-जयकार कर रहे थे। मास्टर जी संध्यावंदन के पश्चात बाहर आए। सभी को नीचे जमीन पर बिछे बच्चों के टाट पर बैठने के लिए कहा। उनका एवं रणजीत सिंह का सामना पहली बार हो रहा था, परंतु उनके बीच के तनाव से सभी परिचित थे। समस्या मास्टर साहब की नहीं, रणजीत सिंह की थी। अधीर होकर आवेगपूर्ण ढंग से रणजीत सिंह ने कहा—"मास्टर साहब! आपको तो पता है कि हम इस जमीन को खरीद चुके हैं। एक बड़े प्रोजेक्ट के लिए हम ऐसा कर रहे हैं। अत: उचित यही होगा कि आप इस जगह को यथाशीघ्र खाली कर दें।"

मास्टर साहब ने शांत एवं गंभीर होकर कहा—"आप राजनेता हैं। जनता की सेवा करना आपका धर्म है। शिक्षा हेतु उचित प्रयास करना भी आपका कर्त्तव्य

है। आप तो अपनी महत्त्वाकांक्षा हेतु अनीति एवं अधर्म का सहारा ले रहे हैं। हम तो यहाँ निःशुल्क शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इसमें तो आपको सहायता प्रदान करना चाहिए।'' इतना सुनकर रणजीत सिंह का क्रोध आँधी के समान उमड़ पड़ा और वे अपशब्द कहने लगे।

मास्टर साहब ने पितातुल्य विनम्र स्वर में कहा— ''इतना अहंकार उचित नहीं है। अहंकार के वशीभूत होकर जिसने भी स्वयं को भगवान मानने का प्रयास किया है, उसका हश्र क्या हुआ, यह सब जानते हैं। इसका परिणाम किसी से छिपा नहीं है। कोई भी शक्तिमान, सामर्थ्यमान तो हो सकता है, पर भगवान नहीं बन सकता।''

अब रणजीत सिंह का आवेश कुछ ठंढा पड़ने लगा था। नीति वचनों ने अहंकार के नीचे दबी उनकी अंतरात्मा को छू लिया था। जिसने जिंदगी में आज तक कभी ना नहीं सुनी थी, वही रणजीत सिंह आज मास्टर जी के रूप में खड़े इनसानियत की मिशाल के समक्ष नतमस्तक हो चुके थे। अब वे उलटे पाँव अपने काफिले के साथ वापस चले जा रहे थे और मास्टर साहब के ऊर्जान्वित शब्द हथौड़े की तरह उनके दिल-दिमाग में चोट कर रहे थे। एक बार फिर अहंकार और स्वार्थ के घने कुहासे को चीरता हुआ इनसानियत का सूरज उग चुका था।

❀

**वैशाली महानगर राज्य महोत्सव मनाने में संलग्न था कि तभी पहले से घात लगाए हुए शत्रुओं ने नगर पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में सेना हार रही थी और शत्रु सेना प्रजाजनों पर अत्याचार करने लगी थी। विवश नगरनायक महायायन का हृदय यह देखकर चीत्कार करने लगा था। कुछ सोचकर वे शत्रु सेनाध्यक्ष से मिलने चल पड़े और उनसे इस अत्याचार को रोकने का अनुरोध किया। शत्रु सेनानायक ने उनके समक्ष यह शर्त रखी कि तुम जितनी देर सामने बह रही नदी में डूबे रहोगे, हमारी सेना लूट-पाट व हिंसा बंद रखेगी। शर्त स्वीकार कर अविलंब महायायन नदी में कूद पड़े।**

**वचनबद्ध शत्रु सेनानायक ने सेना को तब तक के लिए लूट-पाट व संहार बंद रखने को कहा, जब तक कि नगरनायक का सिर पानी के बाहर न दिखाई पड़े। बहुत समय बीत गया, परंतु महायायन बाहर नहीं आए और विशाल शत्रु सेना सेनानायक के नेतृत्व में महायायन के बाहर निकलने की प्रतीक्षा बेचैनी से करने लग गई थी। सेनानायक को आश्चर्य हुआ। उसने गोताखोरों को नगरनायक का पता लगाने को कहा। खोज-बीन करने पर नगरनायक का मृतशरीर चट्टान से लिपटा पाया गया। उसने दोनों हाथों से चट्टान को मजबूती से पकड़ रखा था और मरने के बाद हाथ नहीं छूटें, इसलिए चट्टान से हाथों को दबा दिया था। इस अनुपम त्याग व बलिदान से शत्रु सेनानायक का हृदय द्रवित हो उठा। वह अपनी सेना सहित अपने राज्य को वापस लौट गया।**

# साधना का प्रथम सोपान है संयम

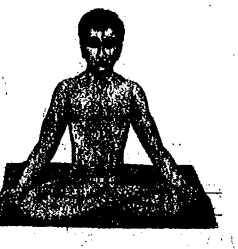

संयम का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह हमारी जीवनीशक्ति को संचित करने के साथ-साथ हमारे स्वास्थ्य का संरक्षण भी करता है। संयम के माध्यम से हमारी ऊर्जा का व्यर्थ अपव्यय नहीं होता, बल्कि इस पर नियंत्रण होता है, जिससे हम ऊर्जा का सुनियोजन कर पाते हैं। संयम के माध्यम से न केवल हमें शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, बल्कि इसके द्वारा सद्विवेक का जागरण होता है, जिससे हम अपनी ऊर्जाओं व क्षमताओं का सही सदुपयोग कर पाते हैं। संयम कर लेना मनुष्य जीवन की सफलता का एक कदम है और इस पर पूरी तरह से अपना नियंत्रण कर लेना ही योगमय जीवन की शुरुआत है। असंयमित जीवन एक ओर जहाँ मनुष्य के शरीर व मन को रोगग्रस्त, प्राणहीन व खोखला कर देता है, दूसरी ओर वहीं उसके जीवन को भयंकर असंतोष व अशांति से भी भर देता है और संयम ही वह मार्ग है, जिससे जीवन में शांति व संतोष का आगमन होता है और किसी भी तरह की परिस्थिति में आंतरिक सुख का आभास होता है।

संयमी व्यक्ति ही जीवन में सच्चे अर्थों में सफल होता है, स्वस्थ रहता है और अपने जीवन को सार्थक करता है और असंयम ही हमारे सभी प्रकार के दुःखों का कारण है। संयम के महत्त्व को दरसाने वाला एक बहुत ही जीवंत प्रसंग भगवान बुद्ध के समय का है—उस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती के निकट एक गाँव में ठहरे हुए थे। अनेक व्यक्ति उनके दर्शन व सत्संग के लिए उनके पास आते रहते थे। इसी क्रम में एक धनी व्यक्ति उनके दर्शन के लिए पहुँचा। उसका शरीर भारी-भरकम था और अपने बेडौल शरीर के कारण वह ठीक से चल भी नहीं पा रहा था। उसे सहारा देने के लिए उसके सेवकगण साथ में थे, जो उसका हाथ पकड़े हुए थे। अपनी शारीरिक स्थिति के कारण भगवान बुद्ध के समीप पहुँचकर भी वह उन्हें झुककर प्रणाम नहीं कर पाया और खड़े-खड़े ही अभिवादन करके विनम्रता से कहा—"भगवन्! मेरा शरीर अनेक व्याधियों का घर बन चुका है। रात को न तो नींद आ पाती है और न ही दिन में चैन से बैठ पाता हूँ। मुझे रोगमुक्ति का साधन बताने की कृपा करें।" भगवान बुद्ध उसकी ओर करुणा भरी दृष्टि से देखते रहे, फिर बोले—"भंते! प्रचुर भोजन करने से उत्पन्न आलस्य और निद्रा, भोग व अनंत इच्छाओं की कामना, शारीरिक श्रम का अभाव—ये सब रोग पनपने के कारण हैं। जीभ पर नियंत्रण रखने, संयमपूर्वक सादा भोजन करने, शारीरिक श्रम करने, सत्कर्मों में रत रहने और अपनी इच्छाएँ सीमित करने से ये रोग विदा होने लगते हैं। असीमित इच्छाएँ और अपेक्षाएँ शरीर को घुन की तरह जर्जर बना डालती हैं, इसलिए उन्हें त्यागो।"

सेठ को भगवान बुद्ध की बातों का मर्म समझ में आ गया और उसने संकल्प लिया कि वह भगवान बुद्ध के द्वारा कहे गए वचनों का पालन करेगा। इन वचनों को जीवन में धारण करने के और संयमित जीवनशैली अपनाने के परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में उसने स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया। अब वह पुनः भगवान बुद्ध से मिलने के लिए गया, लेकिन अब वह अकेला गया था, उसके सेवक उसके साथ नहीं थे। भगवान बुद्ध के समीप पहुँचकर उसने झुककर प्रणाम किया और कहा—"शरीर का रोग तो आपकी कृपा से दूर हो गया। अब चित्त का प्रबोधन कैसे हो?" बुद्ध ने कहा—"अच्छा सोचो, अच्छा करो और अच्छे लोगों का संग करो। विचारों का संयम चित्त को शांति और संतोष देगा।" सेठ ने भगवान बुद्ध के बताए हुए मार्गों पर चल कर अपने जीवन को सार्थक किया।

शांति को मनुष्य जीवन का परम सुख कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यह कहते भी हैं कि **अशांतस्य कुतः सुखम्** अर्थात अशांत व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं रह सकता। भौतिक सुख-सुविधाएँ और बौद्धिक ज्ञान-विज्ञान, दोनों ही व्यक्ति को आंतरिक शांति नहीं दे सकते हैं। धन और सुविधाएँ व्यक्ति को शारीरिक सुख तो दे सकते हैं, किंतु आत्मिक

आनंद नहीं। सच्ची शांति व आनंद तो केवल संयम और संतोष से ही मिलते हैं।

इसलिए युग निर्माण मिशन के प्रणेता पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने संयम को साधना का एक महत्त्वपूर्ण सोपान माना है। उनके अनुसार यदि जीवन में सच्ची सुख-शांति चाहिए तो चार तरह के संयम का पालन करना अत्यंत आवश्यक है—१. इंद्रिय संयम, २. समय संयम, ३. विचार संयम, ४. अर्थ संयम। सबसे पहले शरीर का स्वस्थ व नीरोगी होना जरूरी है। अस्वस्थ शरीर के रहते हुए कितना भी भौतिक सुख उपलब्ध हो, शरीर का दुःख, कष्ट उस सुख को नगण्य बना देता है, शरीर को स्वस्थ रखने का एकमात्र साधन इंद्रिय संयम है। इंद्रियों के माध्यम से हमारी ऊर्जा का निरंतर क्षरण होता रहता है। यदि इन पर संयम किया जाए अर्थात इनके माध्यम से उपयुक्त चीजों को ही ग्रहण किया जाए और अनुपयुक्त का परित्याग हो तो अनावश्यक व्यर्थ होने वाली ऊर्जा का क्षरण रुकेगा और वह ऊर्जा शरीर को स्वस्थ व पुष्ट रखेगी।

दूसरा संयम समय पर संयम है, जिसका पालन करना अत्यंत जरूरी है। परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने कहा भी है—"**जीवन का अर्थ हैं समय, जो जीवन से प्यार करते हों वे अपना समय व्यर्थ न गँवाएँ।**" हमारा यह जीवन ही समय है, हमारा समय समाप्त होने पर हमारा जीवन भी समाप्त हो जाएगा, इसलिए यह जागरूकता होनी जरूरी है कि समय को व्यर्थ बरबाद न किया जाए, समय रहते कार्यों का क्रियान्वयन किया जाए। अपने समय को सुव्यवस्थित तरीके से उपयोग करना व कार्यों को निर्धारित समयावधि में कलात्मक ढंग से पूर्ण करना ही समय संयम है।

इसके बाद आता है—विचार संयम। हम जो भी कार्य करते हैं, अपने विचारों के अनुसार करते हैं। हमारी जो भी इच्छाएँ होती हैं, उसी के अनुरूप हमारे मन में विचार उठने लगते हैं। इसलिए इच्छाओं व विचारों, दोनों का परिष्कार होना जरूरी है और यह विचार संयम से ही संभव है। विचार संयम में हम अपने मन की अवांछित इच्छाओं का परित्याग करते हैं और उचित इच्छाओं को पोषित करते हैं। इसके लिए विवेक का जाग्रत होना व नैतिकता का ज्ञान होना जरूरी है और यह सब स्वाध्याय एवं सत्संग के माध्यम से संभव है। हमें यह निर्धारित करना होगा कि हम किस स्तर के विचारों व व्यक्तियों के संपर्क में रहें। इसके लिए आत्मचिंतन, आत्ममनन, आत्मनिर्माण व आत्ममूल्यांकन करना चाहिए। हमारी इच्छाएँ एवं विचार ही हमारे जीवन की दिशाधारा तय करते हैं, इसलिए इस दिशा में बहुत सोच-समझकर कदम उठाना चाहिए।

चौथा संयम है—अर्थ संयम अर्थात हमारे पास जो भी धन संपदा, साधन संपदा है, उसका सही उपयोग करना। धन-संपत्ति हमारे भौतिक जीवन के निर्वाह के लिए अत्यंत जरूरी है। इसके माध्यम से हम साधन-सुविधाओं का संग्रह करते हैं और अपनी इच्छाओं की पूर्ति करके संतुष्ट होते हैं। इच्छाएँ हमारी अनंत हैं, जो अपनी पूर्ति चाहती हैं, लेकिन धन हमारे पास सीमित होता है, इसलिए परिस्थिति के अनुसार ही अपनी जरूरी इच्छाओं की संतुष्टि करनी चाहिए और धन का अपव्यय नहीं करना चाहिए। यह इतना जरूरी नहीं है कि व्यक्ति

**पिपेश नाकं स्तृभिर्दभूनाः।**
**अर्थात संयम से मनुष्य स्वर्ग को भी जीत लेता है।**

के पास बहुत सारा धन उपलब्ध हो, लेकिन यह जरूर होना चाहिए कि व्यक्ति अपने पास उपलब्ध धन का सही उपयोग करना सीख सके। धन का उपयोग करने की कला न जानने पर कभी-कभी बहुत सारा धन भी कम पड़ जाता है और धन को सही व्यय करना जानने पर कभी-कभी सीमित धन भी खरच के उपरांत बच जाता है। यही तो अर्थ संयम है कि धन-संपत्ति के सही उपयोग करने की कला जानना और इसका अभिवर्द्धन करना।

संयम हमारे जीवन के लिए अत्यंत जरूरी है। जिस तरह नदियाँ प्रवाहित होती हैं तो उनके दो किनारे उनकी सीमा-रेखा होते हैं। उन्हीं किनारों के बीच वे बहती हैं, यदि उनके किनारे तोड़ दिए जाएँ तो प्रवाह ज्यादा दूर तक नहीं बह पाएगा, बस, वह क्षेत्र में फैल जाएगा। उसी तरह संयम हमारे जीवन के विभिन्न आयामों की सीमा-रेखा निर्धारित करता है और हमारे जीवन को अनुशासित करता है। ❀

पर्व विशेष

# मानवीय चरित्र का सर्वोत्कृष्ट आदर्श हैं श्रीराम

मर्यादाओं का पालन करने की बात जहाँ भी आती है, वहीं अयोध्या के राजा श्रीराम स्वतः स्मरण हो जाते हैं। पूरा संसार उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से जानता है, क्योंकि उन्होंने मर्यादाओं का सदैव ध्यान रखा, उनका पालन किया, चाहे कितनी भी विषम स्थिति आई, मर्यादाओं का पालन करने में वे कभी चूके नहीं और मर्यादाओं का घोर उल्लंघन करने वाले दशानन रावण से भी युद्ध किया और उसे पराजित करके मर्यादाओं की पुनः स्थापना की।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार—"भगवान श्रीराम चंद्रमा के समान अति सुंदर, समुद्र के समान गंभीर और पृथ्वी के समान अत्यंत धैर्यवान थे और इतने शील संपन्न थे कि दुःखों के आगोश में जीने के बावजूद वे कभी किसी को कटु वचन नहीं बोलते थे। वे अपने माता-पिता, गुरुजनों, भाइयों, सेवकों, प्रजाजनों अर्थात हर किसी के प्रति अपने स्नेहपूर्ण दायित्वों का निर्वाह किया करते थे। माता-पिता के प्रति कर्त्तव्यपालन एवं आज्ञापालन की भावना तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। उनकी कठोर से कठोर आज्ञा का पालन करने के लिए वे हर समय तत्पर रहते थे।"

यदि भगवान श्रीराम के संपूर्ण जीवन पर एक दृष्टि डाली जाए तो उसमें कहीं भी अपूर्णता दृष्टिगोचर नहीं होती; क्योंकि उनके जीवन में जिस क्षण जिस कार्य को करना चाहिए था, उन्होंने वैसा ही कार्य किया। श्रीराम रीति, नीति, प्रीति तथा भीति सभी के संपूर्ण ज्ञाता व मर्मज्ञ थे। इसी कारण श्रीराम परिपूर्ण हैं और आदर्श हैं। श्रीराम ने अपने जीवन में नियमों का पालन करके, त्याग करके एक आदर्श स्थापित किया।

भगवान श्रीराम का जीवन वास्तव में त्यागमय जीवन था। श्रीराम सबका आदर करते थे, इसलिए वे महान कहलाए। जो संग्रही है, अपनी ही प्रतिष्ठा चाहता है, अपनी ही बात रखना चाहता है, वह कृपण है। लेकिन भगवान श्रीराम जो भी करते थे, दूसरों के लिए करते थे, उनके कारण किसी को क्लेश न हो, इसका वे सदैव ध्यान रखते थे। रामायण में भगवान श्रीराम के दो रूप हैं—पहला परब्रह्म रूप और दूसरा पुरुषोत्तम रूप। भगवान श्रीराम का परब्रह्म रूप तो मन-वाणी से अगोचर है, उसके विषय में तो वेदों ने भी 'नेति-नेति' कहा है। उसका अनुभव तो योगीजन समाधि में करते हैं, वह विचार का विषय नहीं, अनुभव का विषय है।

विचारणीय विषय तो उनका पुरुषोत्तम रूप है। मनुष्य रूप धारण करके उन्होंने जो लीलाएँ कीं, वे मनुष्य चरित्र का सर्वोत्तम आदर्श हैं। श्रीराम अपने भाइयों में बड़े थे, अतः छोटों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका आदर्श उन्होंने बाल्यकाल से ही प्रस्तुत किया। भरत जी जब भी खेल में हारने लगते, तब श्रीराम कुछ ऐसा करते, जिससे भरत जीत जाते और वे स्वयं प्रसन्न होते।

भगवान श्रीराम ने सदैव गुरुजनों व माता-पिता की आज्ञा का दृढ़ता के साथ पालन किया। पिता की आज्ञा से ही वे महर्षि विश्वामित्र के साथ पहली बार वन गए, वहाँ राक्षसी ताड़का का वध किया। ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखकर द्रवित हो उठे और जब जाना कि यह कार्य राक्षसों ने किया है तो तत्क्षण प्रण लिया कि 'मैं इस धरा को राक्षसों से हीन कर दूँगा।'

युवराज श्रीराम के पराक्रम, साहस व वीरता से महर्षि विश्वामित्र अत्यंत प्रभावित हुए थे। उस समय श्रीराम व उनके छोटे भाई लक्ष्मण सुकुमार ही थे, लेकिन गुरु वसिष्ठ द्वारा दी गई शिक्षा-दीक्षा में वे अत्यंत प्रवीण थे। महर्षि विश्वामित्र ने भी उनकी पात्रता को परखकर व उन्हें अवतार जानकर उन्हें बला-अतिबला विद्या का ज्ञान दिया। वन में महर्षि के आश्रम में श्रीराम व लक्ष्मण ने उनके यज्ञों की रक्षा की और यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षसों का संहार किया। इसके बाद वे महर्षि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी गए, जहाँ राम-सीता का विवाह हुआ।

विवाह उपरांत जब राजा दशरथ गुरु की आज्ञा से श्रीराम का राज्याभिषेक करना चाहते थे, तो पूरी अयोध्या नगरी खुशी से झूम उठी, लेकिन रात भर में ही ऐसा

घटनाचक्र परिवर्तित हुआ कि जिसके कारण पिता के वचनों को पूरा करने के लिए उन्हें १४ वर्षों के लिए वनवास को जाना पड़ा। वनवास जाने की खबर सुनकर वे दुखी नहीं हुए, बल्कि प्रसन्न हुए कि उन्हें वन में ऋषियों का सान्निध्य मिलेगा और उनके छोटे भाई भरत को राज्य मिलेगा। वन में श्रीराम के साथ उनकी भार्या सीता व अनुज लक्ष्मण भी गए। अपने राजसी वस्त्रों को त्यागकर, बिना किसी साधन-सामग्री के उन्होंने वन के लिए प्रस्थान किया। सबने उन्हें बहुत रोका, लेकिन वे नहीं माने।

श्रीराम के वन जाने के बाद पुत्र वियोग में राजा दशरथ के प्राण चले गए। पिता के प्राण त्यागने की खबर पाकर जब श्रीराम के छोटे भाई भरत व शत्रुघ्न अपने नाना के घर से आए और स्थिति को जाना तो अपने भाई को मनाने के लिए नंगे पैर वन की ओर गए, लेकिन श्रीराम नहीं लौटे। भरत श्रीराम से अत्यंत प्रेम करते थे। वे श्रीराम के परम भक्त थे। लेकिन जब श्रीराम नहीं माने, तो उनकी चरण पादुका लेकर वापस आए और उन्हें ही राज्य सिंहासन पर रख दिया और तपस्वी की तरह जीवन जीते हुए राज्य का कार्यभार सँभालते रहे।

वन में प्रभु श्रीराम का सामना अनेक राक्षसों से हुआ, जिनका उन्होंने संहार किया। दैवी योजना के तहत वे वन में आए ही इसलिए थे कि वन में रहने वाले राक्षसों का संहार हो, लेकिन श्रीराम के जीवन में एक ऐसी भी घड़ी आई, जब राक्षसों के राजा दशानन रावण ने उनकी भार्या सीता का हरण कर लिया। तब सीता की खोज में उन्होंने वन में रहने वाले वानरों की सेना बनाई, ये कोई साधारण वानर नहीं, बल्कि देवताओं के अंशरूप थे, जो उनकी सहायता करने के लिए आए थे। वानरों की सहायता से श्रीराम ने रावण को पराजित किया, रावण के पूरे राक्षस वंश का सर्वनाश हुआ और सीता जी के साथ सकुशल वे अयोध्या नगरी आ गए और राजा बने।

भगवान श्रीराम ने अपने जीवन में तप को बहुत महत्त्व दिया। वन में रहते हुए उन्होंने तपस्वी जीवन को अंगीकार किया और राजा बनकर भी प्रजा के हितों के लिए एक तपस्वी की तरह कष्ट सहते रहे। वे पिता की भाँति अपनी प्रजा का पालन करते थे, उनके राज्य में किसी को किसी भी प्रकार का दुःख-कष्ट नहीं था, इसलिए उनके राज्य को 'रामराज्य' कहा जाता है। रामराज्य का मतलब ही है ऐसा राज्य जिसमें दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को भी नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। आज भी मनुष्य जाति भगवान श्रीराम को 'राजा राम' के रूप में याद करती है; क्योंकि भगवान श्रीराम ने केवल अयोध्या में ही नहीं, बल्कि सभी के हृदयों पर राज किया था।

भगवान विष्णु के अंशावतार होते हुए भी उन्होंने मर्यादाओं की सीमा में रहकर अपना जीवन-निर्वाह किया और एक आदर्श जीवन जिया। उनके जीवन में अनगिनत कष्ट आए, लेकिन मर्यादाओं का पालन करने में वे कभी भी विचलित नहीं हुए। वे अत्यंत धैर्यवान, पराक्रमी, ज्ञानी, मधुरभाषी, सत्यभाषी, नीतिकुशल, साहसी आदि गुणों की खान थे। उनके गुणों की महिमा अनंत है, जिसका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी अपने को असमर्थ पाते हैं। राम-नाम की महिमा व्यापक है। श्रीराम की भक्ति की महिमा का कोई पार नहीं है, जिससे रामभक्त हनुमान उनके चरणों की सेवा करके असंभव कार्य करते हैं।

इस तरह रामनवमी का पर्व, जिसे हम सभी भगवान श्रीराम के जन्मदिवस के रूप में मनाते हैं, वह हमें यह संदेश देता है कि हम भी भगवान श्रीराम की तरह आदर्श जीवनशैली का निर्वाह करें, मर्यादाओं का पालन करें, गुणों को धारण करें और 'श्रीराम' नाम की भक्ति से अपने जीवन को सफल करें। ✿

**पथिक फूलों से लदे वृक्ष को देखकर बोला—"तुम तो फल-फूल रहे हो और मैं भूखा मर रहा हूँ। भगवान ने मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया?" वृक्ष हँसते हुए बोला—"तुम यदि मेरे पतझड़ के कष्टों को देखते तो अनुभव करते कि ये फल कितनी कठिन तपश्चर्या से प्राप्त किए हैं। तुम भी वैसा पुरुषार्थ करके देखो, उसी से जीवन में समृद्धि और संतुष्टि आती है।"**

# कहीं काल्पनिक दुनिया में ही न खो जाएँ हम

आज के इस वैज्ञानिक युग में विज्ञान अपनी प्रगति के चरम पर पहुँच गया है और इसका पूरा श्रेय आज के प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों को ही जाता है, जिन्होंने अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को वैज्ञानिक अनुसंधान में लगा कर मनुष्य जीवन को सहज बनाने का निरंतर प्रयास किया है। जिन कार्यों की एक साधारण मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं कर सकता है, ऐसे अनेकों चमत्कृत कर देने वाले आविष्कार आज आए दिन होते रहते हैं। आज विज्ञान अपने विकास के चरम पर है और यह विकास इतना अद्‌भुत है कि विज्ञान ने अपनी एक नई दुनिया ही रच डाली, जिसे 'डिज़िटल वर्ल्ड या विजुअल वर्ल्ड' के नाम से जाना जाता है।

यह एक ऐसी दुनिया है, जिसका कोई ठोस व वास्तविक अस्तित्व नहीं है, किंतु जब कोई इसमें प्रवेश करता है तो वह इसमें ऐसे खो जाता है कि उसे अपनी वास्तविक दुनिया भी याद नहीं रहती। इस डिज़िटल वर्ल्ड को रचने वाला विज्ञान है, किंतु जब-जब भी किसी नई सृष्टि का निर्माण करने का प्रयास किया गया है, तब-तब संसार का संतुलन बिगड़ा है और प्रभावित हुआ है सामान्य जीवन। कुछ ऐसे ही दुष्परिणाम आज हमारे सामने आ रहे हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विज्ञान का यह चमत्कार आज हमारे लिए एक अभिशाप बनता जा रहा है।

विज्ञान के इस चमत्कार से हमें विकास में बहुत सहायता मिली है। इसके माध्यम से जीवन सुलभ हुआ है और बढ़ी है रफ्तार, किंतु मनुष्य ने इसका अंधाधुंध उपभोग करना शुरू कर दिया है, जिसके कारण आए दिन नई-नई समस्याएँ उत्पन्न होने लगी हैं। इसका सबसे बुरा प्रभाव बच्चों और युवाओं पर पड़ रहा है। आज टैबलेट और मोबाइल फोन बच्चों व युवाओं के बीच उसी तरह लोकप्रिय हो रहे हैं, जिस प्रकार कभी टीवी हुआ करता था। इन आधुनिक उपकरणों को आधुनिक भाषा में गैजेट कहा जाता है। ये गैजेट वास्तव में बच्चों व युवाओं के मनोरंजन का साधन बन रहे हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि इनके अपरिमित इस्तेमाल का बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

बच्चों का वास्तविक मनोरंजन तो खेल-कूद है। खेल-कूद एक ऐसा साधन है, जिससे बच्चों का शारीरिक विकास तो होता ही है, पर साथ में उनके मानसिक विकास में भी यह सहायक होता है। थोड़ी देर के खेल-कूद से बच्चों की दिनभर की थकान दूर हो जाती है और वे अपने आप में एक ताज़गी व उत्साह अनुभव करते हैं। खेल-कूद के दौरान मिलने वाली शारीरिक व मानसिक चुनौतियों का सामना करना एक ऐसा अभ्यास होता है, जो बच्चों को जीवन में आने वाली वास्तविक चुनौतियों का सामना करने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोध-अध्ययनों में यह पता चला है कि जो बच्चे खेल-कूद में उत्साहपूर्वक भागीदारी करते हैं, वे अपने जीवन में अधिक सफल देखे गए हैं, लेकिन आज मनोरंजन का उद्‌देश्य व साधन, दोनों ही बदलते जा रहे हैं। आज के बच्चे के लिए मनोरंजन का उद्‌देश्य मात्र टाइम पास करना रह गया है और तरह-तरह के खेल-कूद के स्थान पर गैजेट का स्तेमाल होने लगा है, जिसका दुष्प्रभाव आए दिन देखने को मिल रहा है।

गैजेट के इस्तेमाल का एक नकारात्मक प्रभाव बच्चों पर यह पड़ रहा है कि ऐसे बच्चे एक काल्पनिक दुनिया में जीने लगने लगते हैं और उसी में रहना पसंद करते हैं। उन्हें अब किसी से मिलना-जुलना, बातचीत करना, पढ़ना-लिखना, यहाँ तक कि खेल-कूद भी अच्छा नहीं लगता, वे अकेले रहना अधिक पसंद करते हैं। इस अकेलेपन में रहने के कारण उनमें अनेकों मानसिक समस्याएँ, जैसे—चिड़चिड़ाहट, आक्रामकता, अनिद्रा, तनाव, अवसाद आदि उत्पन्न हो रही हैं।

आज खेल-कूद के साधन ही नहीं बदले, बल्कि साथ में बदले हैं—खान-पान के तरीके भी। पहले भोजन शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर किया जाता था, किंतु आज स्वास्थ्य का स्थान स्वाद ने ले लिया है। आज बच्चे स्वादिष्ट भोजन करना ज्यादा पसंद करते

हैं। आधुनिकता ने बच्चों को इस कदर प्रभावित किया है कि आज बच्चे रोटी, दाल, चावल, सब्जी आदि को ट्रेडिशनल खाना कहने लगे हैं और बरगर, पीजा, मोमो, सोफ्ट ड्रिंक आदि को आधुनिक खाना। ऐसे फास्ट फूड को खाने में बच्चे तो बच्चे, बड़े भी अपनी शान समझने लगे हैं। आज बच्चों को दाल-रोटी अच्छी नहीं लगती, बल्कि उन्हें तो पीजा-बरगर खाना और कोल्ड ड्रिंक पीना अच्छा लगता है। सच तो यह है कि विज्ञान और आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में बचपन तो खो रहा ही है और साथ ही बढ़ रही हैं अनेकों समस्याएँ।

अभी हाल ही के आँकड़ों से पता चलता है कि हर तीसरा बच्चा किसी न किसी गैजेट का इस्तेमाल करता है। कोई न कोई गैजेट उसे उसी उम्र में मिल जाता है, जब वह ठीक से बोलना भी नहीं जानता। लंदन में कार्यरत बाल मनोवैज्ञानिक डॉक्टर रिचर्ड ग्राहम और डॉक्टर जे वाट्स कहते हैं कि टेक्नोलॉजी की लत किसी बच्चे के व्यवहार और सोने की आदत को प्रभावित कर सकती है। उन्होंने कहा है कि इस लत से बच्चों की सेहत पर बहुत बुरा असर पड़ सकता है और इस विष को बच्चों के दिमाग से दूर करना जरूरी है। ग्राहम ने कहा कि यदि किसी बच्चे को गैजेट की लत लग चुकी है तो इसकी जाँच, पाँच विशेष संकेतों से की जा सकती है। पहला संकेत—ऐसे बच्चे प्राय: गैजेट के बारे में ही बात करते देखे जाते हैं। दूसरा संकेत—ऐसे बच्चे गैजेट के अलावा दूसरे कामों के प्रति उदासीनता या अरुचि दिखाते हैं। तीसरा संकेत—ऐसे बच्चों का व्यवहार अधिक चिड़चिड़ा व आक्रामक हो जाता है। चौथा संकेत—गैजेट न होने पर तनाव या अलगाव में रहना। पाँचवाँ संकेत—झूठ बोलना या कुटिल व्यवहार प्रदर्शित करना।

सोशल मीडिया के नाम पर बच्चे तो बच्चे, बड़े भी अपना बहुमूल्य समय गैजेट में बरबाद करने लगे हैं और ऐसा करना अपनी शान समझते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि आजकल अभिभावक यह समझने में माथापच्ची करते हैं कि सोशल मीडिया बच्चों के लिए किस हद तक जरूरी है। यह एक ऐसा पागलपन है, जिसमें कोई लाभ तो नहीं, बल्कि नुकसान अधिक है। जिस समय का उपयोग कभी लोग अपने परिवार व साथी-संबंधियों से मिलने में करते थे, उसकी अपेक्षा आज सोशल मीडिया में बनाए गए संबंध ही असली माने जाते हैं, जबकि वास्तविक जीवन के संबंध अपना मूल्य खो रहे हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं, जो वास्तविक जीवन में संबंधों को न तो स्थापित कर पाते हैं और न ही निभा पाते हैं, तथापि डिजिटल वर्ल्ड में वे एक काल्पनिक संबंधों की दुनिया निर्मित कर चुके होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए फिर सामान्य संबंधों का भी निर्वाह कर पाना संभव नहीं हो पाता।

बिस्तर पर पड़े रहने के बावजूद देर तक नींद न आना, आजकल स्वास्थ्य संबंधी एक आम समस्या बनती जा रही है। विशेषज्ञों का कहना है कि वयस्क लोग जीवन की भाग-दौड़, संघर्ष व तनाव के चलते इस बीमारी के शिकार हो जाते हैं, लेकिन आजकल बच्चों की भी नींद उड़ने लगी है। बच्चों में इस बीमारी के मुख्य कारण गैजेट का अधिक उपयोग, कोल्ड ड्रिंक, फास्ट फूड आदि बताए जाते हैं। ब्रिटिश विशेषज्ञों के मुताबिक अनिद्रा, नींद में चलना या फिर नींद में होने वाली साँस की समस्या कम उम्र के बच्चों में भी तेजी से देखने में आ रही है। आँकड़ों से यह पता चलता है कि यह समस्या पिछले कुछ वर्षों में बहुत तेजी से बढ़ी है। दरअसल बदलते दौर में बच्चे देर रात तक टीवी देखते हैं या गैजेट का इस्तेमाल करते हैं। उनके खान-पान में भी हाई कैलोरी युक्त चीजों का ज्यादा समावेश हो गया है। ये सब सम्मिलित रूप से बच्चों की नींद खराब करने के लिए जिम्मेदार हैं। इसके अलावा बढ़ती असुरक्षा की भावना से भी बच्चों को घर से बाहर खेलने पर रोक लगा दी जाती है, जिससे बच्चे टीवी या गैजेट की शरण में जाते हैं। विशेषज्ञों ने अपने शोध में पाया कि टीवी व गैजेट की रोशनी व आवाज बच्चों के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

हमें आधुनिकता की इस अंधी दौड़ से दूर हटकर यह सोचना होगा कि आखिर इस दौड़ का अंत क्या होगा, अन्यथा हम इतने दूर निकल जाएँगे कि जहाँ से लौट पाना मुश्किल हो जाएगा। समय रहते सँभल जाना और सुधार कर लेना ही बुद्धिमानी कहलाती है। जीवन का वास्तविक विकास तो सहजता में है, हमारी प्राचीन जीवनपद्धति में है, न कि आधुनिकता की अंधी दौड़ में। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों की खेल-कूद में रुचि पैदा करने के लिए स्वयं प्रयास करें और जहाँ तक हो सके इन आधुनिक उपकरणों की लत से उन्हें बचाएँ, तभी वे उनका समग्र विकास कर पाने में सक्षम होंगे।

# कामनाएँ न कभी पूर्ण हुई हैं, न होंगी

''तुम जो चाहो माँग लो। तुम्हारी इच्छा ही सर्वोपरि है। इस राज्य की क्षमता होगी, तो अवश्य पूरी होगी। तुम्हें निराश नहीं किया जाएगा। आज तक ऐसा नहीं हुआ है कि श्रावस्ती राज्य से कोई खाली हाथ गया हो। यदि अपनी इच्छा अभी प्रकट नहीं कर सकते हो तो कल अभिव्यक्त करना।''—श्रावस्ती नरेश ने अभिरूप कपिल से कहा। अभिरूप कपिल राजप्रासाद की ओर चला गया। उसे रात भर नींद नहीं आई। कामनाओं के समुद्र में वह लहरों के समान उतरने-तैरने लगा। वेगवती नदी में भँवर के समान उसका मन तीव्रता से घूर्णन करने लगा था।

अभिरूप कपिल सोचने लगा कि श्रावस्ती नरेश का नियम है कि प्रात:काल सर्वप्रथम उन्हें जो अभिवादन करेगा, उसे वे दो स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान करते हैं, परंतु महाराज ने तो उसे कुछ भी माँगने के लिए स्वतंत्र कर दिया। उसने सोचा कि दो स्वर्ण मुद्राएँ तो अत्यंत न्यून हैं, क्यों न सौ स्वर्ण मुद्राएँ माँग लूँ। सौ स्वर्ण मुद्राओं के संग उसकी कल्पना जुड़ने लगी, नए-नए रंग उभरने लगे। वह कामनाओं की सतरंगी इंद्रधनुषी आभा के संग अनंत आकाश में विचरण करने लगा। कल्पनाएँ बड़ी हो गईं थीं, इच्छाएँ अठखेलियाँ कर रही थीं, अत: उसे सौ स्वर्ण मुद्राएँ भी कमतर लगने लगीं।

अभिरूप ने फिर सोचा कि सौ स्वर्ण मुद्राओं से काम नहीं चलने वाला है क्यों न सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ माँग लूँ; क्योंकि माँग की पूर्ति का वचन जो दिया गया है। इन मुद्राओं से उसकी इच्छाएँ जुड़ने लगीं और उसने सोचा कि वह एक बड़ा-सा सुंदर एवं भव्य मकान बनाएगा और विवाह कर उसमें सुखपूर्वक जीवन बिताएगा, परंतु सुखी जीवन के लिए जो साधन एवं सुविधाओं की आवश्यकता होगी, इतनी मुद्राओं से उसकी पूर्ति नहीं हो सकेगी। अत: उसने सुखी जीवन हेतु एक लाख स्वर्ण मुद्राओं की कल्पना की। वह भी उसे कम लगने लगीं। सोचा कि एक कोटि स्वर्ण मुद्राओं से काम चल जाएगा। जीवन की भव्यता का आसार उसे नजर आने लगा।

इच्छा तो धधकती आग है और लोभ उसे और भी विकराल रूप प्रदान कर देता है। अभिरूप कपिल की इच्छा लोभ के संग मिलकर गगनचुंबी लपटों के रूप में फैल रही थी। वह तय नहीं कर पा रहा था कि अपनी असीम इच्छाओं में से कौन-सी इच्छा को स्थिरता प्रदान करे। वह समझ नहीं पा रहा था कि कल जब सुबह होगी तो महाराज से वह क्या माँगेगा? इस तरह रात को एक क्षण भी वह विश्राम न कर सका, एक अजीब-सी उधेड़-बुन में उसकी निशा कटी।

अभिरूप कपिल श्रावस्ती नरेश से मिलने के लिए प्रस्थान करने लगा। ब्रह्ममुहूर्त में मंद-मंद शीतल बयार बह रही थी। कोयल की मीठी कूक अंतर में एक अपार शांति का अनुभव प्रदान कर रही थी, पर इन सब प्राकृतिक सौंदर्यों से बेखबर अभिरूप अपनी ही इच्छाओं के भीषण झंझावात में बहे चला जा रहा था। अभी तक वह निश्चित ही नहीं कर सका था कि उसकी माँग क्या होगी? इसी बीच श्रावस्ती नरेश की स्नेहिल आवाज से वह प्रकृतस्थ हुआ। वे कह रहे थे—''द्विज कुमार! अपनी इच्छा प्रकट करो। मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे अवश्य पूरा करूँगा।''

अभिरूप ने कहा—''महाराज! मैंने बहुत सोचा कि मैं आपसे क्या माँगूँ, पर जितना सोचा, उतना लगा कि माँगी गई धनराशि मेरी कामनाओं की पूर्ति करने में असमर्थ होगी। मेरी कामना है कि आप तो बस, मुझे अपना पूरा राज्य ही सौंप दें।'' यह सुनकर श्रावस्ती नरेश अत्यंत प्रसन्न हो उठे और यह प्रसन्नता उनके मुखमंडल पर झलकने लगी। वे गद्‌गद हो उठे। उन्होंने कहा—''द्विजकुमार! तुमने तो आज मुझे एक बहुत बड़े भार से मुक्त कर दिया। मैं तो न जाने कब से इस राज्य की जिम्मेवारियों से मुक्त होना चाह रहा था, आज तुमने इसे ही माँगकर मुझे निर्भार कर दिया। तुम सहर्ष इसकी जिम्मेवारी सँभालो।''

अभिरूप कपिल कौशांबी के राजपुरोहित का पुत्र था और श्रावस्ती आचार्य इंद्रदत्त के आश्रम में अध्ययन हेतु आया हुआ था। वह अत्यंत मेधावी एवं कुशाग्र

विद्यार्थी था। आचार्य इंद्रदत्त भी उसकी प्रतिभा से अत्यंत प्रभावित थे। आश्रम में उसकी व्यवस्था न होने के कारण उन्होंने नगरसेठ के यहाँ उसके ठहरने की व्यवस्था कर दी। जगह अभिरूप को अच्छी लगी थी। अभिरूप सदा आश्रम व्यवस्था में रहा था, यकायक नगर सेठ के यहाँ रहने से उसके मन में सुप्त आकांक्षाएँ जाग्रत हो उठीं। जैसे-जैसे कामनाएँ बढ़ीं, कामनाओं की पूर्ति की इच्छा भी बलवती हो उठी।

इसी क्रम में उसका हृदय सुनंदा नामक युवती की ओर आकर्षित हो उठा। प्रेमासक्त होकर एक दिन अभिरूप ने सुनंदा से प्रणय निवेदन किया, जिसके उत्तर में सुनंदा बोली—"तुमसे विवाह करना मैं भी चाहूँगी, परंतु मेरे पास न तो विवाहयोग्य आभूषण हैं और न ही उपयुक्त वस्त्र। क्या तुम इस हेतु उपयुक्त व्यवस्था बना सकते हो?" उत्तर में अभिरूप ने हाँ तो कह दिया, पर मन ही मन वह जानता था कि वह तो मात्र एक विद्यार्थी है, इतनी सारी माँगों को पूरा कर पाना उसकी सामर्थ्य में कहाँ?

इसी ऊहापोह में वह श्रावस्ती नरेश के पास पहुँचा था, तो उन्होंने उसे अपनी कामना सोच-समझकर व्यक्त करने की सलाह दी। अपनी कामना व्यक्त करने पर जब महाराज ने उसे पूरा राज्य सहर्ष दे देने का प्रस्ताव रखा तो अभिरूप कपिल का सोया विवेक जाग उठा। उसे भान हुआ कि जिस राज्य को छोड़ने में राजा को एक क्षण की देर भी न लगी, वो राज्य उसे क्या सुख प्रदान कर सकेगा? उसे यह समझते देर न लगी कि वह अपने उद्देश्य से भटक गया है, परंतु उचित समय में जाग्रत विवेक उसे सँभलने के लिए अवसर प्रदान कर रहा था। अभिरूप कपिल ने कहा—"महाराज! कामिनी और कंचन के वशीभूत होकर मैं एक भूल करने जा रहा था। अब मुझे अपना उद्देश्य एवं लक्ष्य याद आ गया है। जिस दलदल से आप निकलना चाहते हैं, उसमें फँसकर मैं भला क्या प्राप्त कर पाऊँगा? मुझे आपसे कुछ भी नहीं चाहिए।" यह कहकर राजप्रासाद से निकलने में अभिरूप को देर न लगी। उसे जाता देख श्रावस्ती नरेश मंद-मंद मुस्कराए। वह तो पहले से ही निरासक्त थे, पर आज उनकी निरासक्ति ने किसी और के मन में भी विरक्ति के बीज बो दिए थे। ❀

**गाँव के बाहर रास्ते पर ज्येष्ठ की तपती दोपहरी में एक वृद्ध व एक युवक मूर्च्छित पड़े थे। अनेकों उन्हें देखकर गुजर गए, परंतु एक व्यक्ति रुका, उन पर जल छिड़ककर उन्हें होश में लाया। पूछने पर उन्होंने बताया कि वे दोनों काम की तलाश में अपना गाँव छोड़कर निकले हुए हैं और तीन दिन से कुछ खाया नहीं है। वह उन पिता-पुत्र को अपने घर ले गया। भोजन कराकर रास्ते के लिए कुछ व्यवस्था कर उन्हें विदा दी।**

**उनके तृप्त होकर जाने के पश्चात भी उस व्यक्ति को संतुष्टि नहीं मिली और उसे ऐसे अन्य व्यक्तियों को मिल रही पीड़ा के विषय में सोचकर अशांति होने लगी। उसने अपनी पत्नी से विचार-विमर्श किया और यथासंभव ऐसे लोगों की सहायता करने का संकल्प लिया। वर्षों तक यह क्रम चलता रहा। एक दिन एक साधु आए और उन दोनों की परमार्थपरायणता को देखकर उन्हें एक झोली देकर चले गए, जो कभी खाली नहीं होती थी। गुजरात के वीरपुर गाँव के ये दंपती थे—जलाराम बापा और वीरबाई। दुखी मानवता की सेवा और कर्त्तव्यपरायणता का यह आदर्श उदाहरण आज भी कइयों के मन में प्रेरणा पैदा करता है।**

# एकांत में ही होता है रचनात्मकता का उदय

एकांत हर व्यक्ति के जीवन में होता है। मनुष्य अकेला ही धरती पर आता है और अकेला ही इस धरती से जाता है। जीवन में ऐसी बहुत-सी परिस्थितियाँ बनती हैं, जिनमें उसे एकांत का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति के जीवन में विभिन्न रूपों में एकांत शामिल है। एकांत का अर्थ है—केवल एक का होना। सामान्यतया लोग एकांत का अर्थ अकेलापन लगा लेते हैं; जबकि दोनों के बीच का अंतर बाह्य और आंतरिक दृष्टि से है।

बाह्य दृष्टि से अकेलेपन में व्यक्ति के साथ कोई नहीं होता; जबकि आंतरिक दृष्टि से अकेलेपन में व्यक्ति के मन में एक ही विचार व भाव उतरता है और वह उसकी गहराई में जाता है। इस स्थिति में यदि तरह-तरह के विचार उठते भी हैं तो व्यक्ति का उनके ऊपर पूरा नियंत्रण होता है और इस तरह वह अकेलेपन में उठने वाले इन विचारों से परेशान नहीं होता, बल्कि उनका आनंद लेता है। इसके विपरीत यदि मन में उठने वाले विचारों पर व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता, तो वह बेचैन व परेशान हो जाता है व तनाव से घिरता है।

सामान्य जीवन में एकांत को लेकर लोग नकारात्मक बातें अधिक करते हैं; जबकि यह पूरी तरह सच बात नहीं है। येल यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध मनोविज्ञानी पॉल ब्लूम कहते हैं—"एकांत ऐंटीबॉयोटिक की तरह होता है। यदि एकांत का समुचित सेवन किया जाए तो यह आपको शानदार व्यक्तित्व दे पाने में समर्थ होता है।" इसका अर्थ है कि यदि हमें संसार में रहना है तो जीवन में एक संतुलन, सामंजस्य बैठाना होगा। यदि व्यक्ति पूरी तरह से एकांत को अपना ले, तो वह देश-दुनिया व समाज से कट जाएगा और उसका व्यक्तित्व समाज के अनुकूल विकसित नहीं हो पाएगा। इसके विपरीत यदि उसके जीवन में एकांत तो हो और वह उसका सही उपयोग कर रहा हो तो उसका व्यक्तित्व निखरकर उभरेगा। ऐसा व्यक्तित्व समझदार, विवेकशील, व्यावहारिक व रचनात्मक होगा।

ब्लूम आगे कहते हैं—"एकांत अवस्था में अवचेतन मन अधिक सक्रिय होता है। इस अर्थ में देखें तो टैगोर भी एकांतप्रिय थे और गांधी भी, पिकासो भी और आइंस्टाइन भी। इसलिए अकेलेपन को नकारने की नहीं, बल्कि स्वीकार करने और उसे सहज बनाने की जरूरत है।"

एकांत को इस अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए कि हम अपने घर-परिवार, सामाजिक सरोकार से कट जाएँ, बल्कि इसमें निरंतरता के साथ एकांत में रमने की कला सीखनी चाहिए; क्योंकि बगैर इसके व्यक्ति रचनात्मक नहीं हो सकता। लोगों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि इसकी जरूरत ही क्या है? हम तो कवि, लेखक आदि हैं नहीं। लेकिन ब्लूम इसके बारे में कहते हैं—"यह हमारी भूल है। रचनात्मक दिमाग हर कार्यक्षेत्र में उन्नति की राहें खोलता है; क्योंकि ऐसे में अवचेतन मन अधिक सक्रिय होता है।"

निश्चित रूप से जब हम कुछ विचार करते हैं, तो अकेले होते हैं। जब हमारे मन में कुछ विचार उठता है, तो उसे समझने के लिए हमें अकेले ही प्रयास करना पड़ता है। हमारे मन में अनगिनत स्मृतियाँ जन्म लेती हैं, और ये अच्छी और बुरी, दोनों तरह की हो सकती हैं। यदि हमारी चिंतनशैली में नकारात्मक तत्त्व हावी हैं या हम नकारात्मक दिशा में सोचते हैं तो हमारा व्यक्तित्व एक तरह से मनोरोगी होने लगता है और यदि हम सकारात्मक दिशा में सोचते हैं तो व्यक्तित्व में निखार आता है, वह और अधिक सँवरने लगता है, विकसित होता है।

व्यक्ति का रचनात्मक विकास सकारात्मक व नकारात्मक, दोनों ही दिशा में हो सकता है, लेकिन रचनात्मक बनने के लिए व्यक्ति को एकांत का सहारा लेना होता है, स्थिर-एकाग्र होना होता है। एकांत से किसी को भी डरने या घबराने की जरूरत नहीं, बल्कि इसे अपने जीवन का एक हिस्सा बनाने की जरूरत है; क्योंकि इस अवधि में यदि आत्मावलोकन किया जाए तो अनगिनत

गुत्थियाँ सुलझती हैं। हमें उन कारणों का पता चलता है और हमारे सवालों का जवाब मिलता है।

जब भी हम लोगों से या भीड़ से घिरे होते हैं और अंतर्मुखी होते हैं, तब भी हम अकेले होते हैं, यह अकेलापन तो तब भंग होता है जब हम बहिर्मुखी होते हैं, लेकिन बहिर्मुखी होने पर न तो हम पूरी तरह से एकाग्र व तल्लीन हो सकते हैं और न ही महत्त्वपूर्ण कार्यों को कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें बहिर्मुखी नहीं होना चाहिए, केवल अंतर्मुखी होना चाहिए। इसका अर्थ तो यह है कि आवश्यकता व परिस्थिति के अनुसार बहिर्मुखी व अंतर्मुखी, दोनों होना चाहिए। इन दोनों ही पहलुओं को अपने व्यक्तित्व में शामिल करना चाहिए और इनमें सामंजस्य रखना चाहिए।

बहिर्मुखी होकर हम देश, दुनिया के बारे में जान पाते हैं, लोगों से संपर्क करते हैं। उन्हें समझते हैं, आज की समस्याओं को समझ पाते हैं; जबकि अंतर्मुखी होकर उन समस्याओं का समाधान खोज सकते हैं, गुत्थियों को सुलझा सकते हैं, स्वयं को व अपनी क्षमताओं को जान सकते हैं, अपनी कमियों को जान सकते हैं और उन्हें दूर करने का प्रयास कर सकते हैं।

अंतर्मुखी होने के लिए अकेलेपन या एकांत का सहारा लेना पड़ता है, लेकिन इसके लिए परिवार व समाज से कटने या दूर होने की जरूरत नहीं। एकांत का लाभ लेने के लिए फ्रेंज का विचार है—"तुम्हें अपना कमरा छोड़कर कहीं जाने की जरूरत नहीं, अपनी टेबल पर बैठकर ध्यान से सुनते रहो। तुम्हें सुनने की भी जरूरत नहीं। बस, इंतजार करो...शांत और अचल रहने का प्रयास करो। यह दुनिया खुद-ब-खुद स्वयं को तुम्हारे सामने उजागर करेगी।"

फ्रेंज का यह कथन सत्य है। बस, इसकी अनुभूति करने की जरूरत है। पहले कई लोगों ने इसका अनुभव किया है। वैज्ञानिकों, कवियों, लेखकों ने इस एकांत के द्वारा ही अपनी समस्याओं को सुलझाया है और अपने रचनात्मक जीवन की शुरुआत की है। इसके माध्यम से हम भी रचनात्मक बन सकते हैं और इसका लाभ ले सकते हैं। ❀

**महाकवि माघ प्रसिद्ध कवि होने के अतिरिक्त एक उदारचेता महामानव भी थे। उनके साथ उनके परिवार के हर सदस्य के अंदर भी उदारता की यह भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। एक बार एक निर्धन व्यक्ति उनसे सहायता माँगने पहुँचा। उसको अपनी पुत्री का विवाह करना था, पर उसके पास अपेक्षित धनराशि का अभाव था। उसकी व्यथा सुनकर माघ चिंतित हो गए; क्योंकि उनके पास भी इतना धन नहीं था, जिससे वे उस व्यक्ति की सहायता कर पाते। माघ को चिंतित देख उनकी माँ ने अपने कान के कुंडल उतारकर उनके हाथ पर रख दिए, ताकि उनका उपयोग कर माघ उस व्यक्ति की आर्थिक सहायता कर सकें। माघ उन कुंडलों को अपने हाथ में ले पाते कि तब तक उनकी पत्नी ने भी अपने हाथ के कड़े उतारकर माघ के हाथों में रख दिए और बोलीं—"माँ के कुंडल इतने बड़े कार्य के लिए पर्याप्त न होंगे, आप मेरे कड़े भी ले लें।" घर आया निर्धन व्यक्ति माघ एवं उनके परिवार की उदारता के आगे नतमस्तक हो गया।**

# भावना से भक्ति की यात्रा

भावना एक गहन अनुभव है, जिसमें हम जीते हैं। यह जीवन का अभिन्न अंग है, जिसके बिना जीवन अधूरा, एकांगी एवं सूना-सा हो जाता है। जीवन में भावना होती है, तो सब हो जाता है और खोती है, तो सब खो जाता है। यह होती है तो जीवन गहराई लिए हुए होता है, जिसमें संबंधों की मधुर सुगंध फैलती है और यह नहीं होती है तो जीवन उतना ही कृत्रिम होता है, जितना नाटक में नाटकीयता होती है। दीखने और दिखाने के लिए यह सब बड़ा अच्छा होता है, परंतु इसमें कहीं अपना और अपनापन नहीं होता है।

भावना के अभाव में जीवन रेगिस्तान जैसा शुष्क, बंजर एवं काँटों से भरा होता है, जो स्वयं को चुभता है, काटता है और औरों को भी इस चुभन का एहसास दिलाता है। भावना से शुष्क जीवन में भले ही कितनी भी चकाचौंध क्यों न हो, लेकिन इससे स्थायी संबंध की कल्पना नहीं की जा सकती है; क्योंकि कृत्रिमता रंगमंच के लिए होती है, यथार्थ जीवन के लिए नहीं। नाटक के पात्र स्वयं को बेहतर समझते हैं कि वे कौन हैं और उनका क्या अस्तित्व है और इसे देखने वाले भी जानते हैं कि यह तो मात्र एक मनोरंजन है, जो एक दिन समाप्त हो जाएगा।

भावना के अभाव में जीवन की समस्त संपदाएँ एवं उपलब्धियाँ निर्जीव एवं नीरस प्रतीत होती हैं। संवेदना विहीन जीवन को कोई चाहे जितना भी सजा-सँवार ले, ऐसा जीवन निरर्थक ही प्रतीत होता है। कृत्रिम पुष्प को कितना भी सजा लिया जाए, एक प्राकृतिक पुष्प के सौंदर्य के सामने वह पल भर भी नहीं टिक सकता। वैसे ही भावनाविहीन व्यक्ति कितनी भी बड़ी उपलब्धियाँ हासिल कर ले, वह एक भावनासंपन्न व्यक्ति के सामने तुच्छ-सी जान पड़ती हैं। आधुनिक जीवन का बाह्य शृंगार, आंतरिक सौंदर्य के सामने नगण्य है। यह आंतरिक सौंदर्य और कुछ नहीं, बल्कि भावनाशीलता ही है।

वर्तमान युग में हुए अनगिनत आविष्कारों एवं खोजों ने जीवन को बड़ा आसान कर दिया है। इससे सफलता एवं उपलब्धियों में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई, परंतु सफलता के इस शिखर पर कोई चीज जो अछूती रह गई, वह है—भावनात्मक परिष्कार एवं विकास। इसके अभाव में शेष सारी चीजों ने हमें एवं हमारे जीवन को यांत्रिक बना दिया है। यांत्रिकता जीवन की नैसर्गिकता को विकृत कर देती है और जीवन निराशा, हताशा एवं विषाद के तमस् में घिर जाता है।

ऐसे जीवन में सब कुछ होता है, परंतु अपनापन नहीं होता, संबंध नहीं होते, संबंधों का सौंदर्य एवं सरसता नदारद होती है; जबकि घोर अभाव में भी भावना हमें अंदर से तृप्त कर देती है। हम बाह्य रूप से भले ही निर्धन हों, किंतु आंतरिक रूप से समृद्ध होते हैं। ऐसी समृद्धि कैसे मिल सकती है, तो इसका उत्तर एक ही है कि संवेदनशीलता ही आंतरिक समृद्धि का पर्याय है।

सम+वेदना, संवेदना का तात्पर्य है—औरों के सुख-दुःख का समान अनुभव होना। यदि कोई सुखी है तो उसके सुख का अनुभव कर उसके साथ आनंद मनाना, न कि ईर्ष्या करना और यदि कोई दुखी है तो उसके प्रति सहानुभूति रखना न कि प्रसन्न होना। संवेदनशीलता के अभाव में इसके ठीक विपरीत अनुभव होता है, सुखी के प्रति ईर्ष्या एवं दुखी के प्रति निष्ठुरता का भाव प्रदर्शित होता है।

संवेदना हो तो व्यक्तित्व परिष्कृत होता है और दूसरों की पीड़ा के प्रति सजगता विकसित होती है। संवेदना विकसित होने से एकदूसरे के प्रति समझ पैदा होती है, उससे हम एकदूसरे से प्रभावित होते हैं और एकदूसरे को प्रभावित करते भी हैं। यह संवेदना जितनी गहन होती है, उतना ही मजबूत हमारे संबंधों का आधार होता है। संवेदनाविहीन संबंध ताश के पत्तों के समान ढह जाते हैं, बालू की धरा के समान पल भर में बालू में ही मिल जाते हैं। संवेदनात्मक संबंध मानवीय होते हैं, जिसमें आदान-प्रदान प्रमुख होता है। लिया है, तो देना भी होता है, परंतु जो केवल लेना जानता है देना नहीं, वह पैशाचिक संबंध है। इसके विपरीत जो केवल देना

जानता है, लेना नहीं, उसे दैवीय संबंध कहते हैं। इन संबंधों का आधार हमारी समझ होती है और इन संबंधों से एक गहरा विश्वास पैदा होता है।

विश्वास में शक, संदेह एवं संशय का कोई स्थान नहीं होता है। विश्वास में लेन-देन का भाव नहीं होता है और यह भाव जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तो सात्त्विक प्रेम का जन्म होता है। कहते हैं कि सात्त्विक प्रेम तो बस, प्रभु के साथ संभव है; क्योंकि इस प्रेम का आधार संवेदना, विश्वास, आत्मीयता की धुरी पर टिका होता है—आदान-प्रदान, लेन-देन, लाभ-हानि जैसे व्यावसायिक मानदंडों पर नहीं।

ऐसा सात्त्विक प्रेम जब प्रगाढ़ होता है तो श्रद्धा जन्म लेती है, जिसके होने का केवल अनुभव किया जा सकता है। इस अनुभव का अंत भक्ति के शिखर पर होता है। भावना के परिष्कार की यात्रा भक्ति-द्वार पर पहुँचकर संपन्न होती है। जहाँ सब एक हो जाता है, वहाँ द्वैत नहीं, अद्वैत होता है। मैं और मेरा का भाव विलीन होकर केवल तुम और तुम्हारा का भाव शेष रह जाता है। इस भावानुभूति की अभिव्यक्ति वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे गूँगे व्यक्ति के लिए गुड़ का स्वाद बता पाना संभव नहीं है।

भावना के विकास के साथ ही स्वार्थपरता एवं अहंकार विलीन हो जाते हैं और जाग्रत होता है, परम प्रभु के लिए वह भक्ति भाव, जो स्वयं को उत्सर्ग करने से भी कतराता नहीं है। ऐसा जीवन मानवता के कल्याण के लिए होता है और उसके अंतस् में केवल परमात्मा होता है। 'शिव भावे जीव सेवा' की उक्ति चरितार्थ होती है। अत: जीवन को भावमय बनाना चाहिए। जीवन के हर-पल, हर-क्षण को प्रभुमय बनाकर, केवल उसी के लिए ही जीवन केंद्रित करना चाहिए। ऐसा प्रभुमय जीवन जब हो जाता है तो परम प्रभु उसे अपनी गोद में उठा लेते हैं। संवेदना के सोपानों पर चढ़ती हुई यह जीवनयात्रा भक्ति के शिखर पर पहुँचकर संपन्न होती है।

# वर्ष २०१४-१५ में शांतिकुंज के शिविर

परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज को जीवन के कायाकल्प करने की अकादमी के रूप में गढ़ा और विकसित किया है। वे कहते रहे हैं कि जो लायक हों, वे ही यहाँ ट्रेनिंग प्राप्त करने आएँ। हम रहें या न रहें, हमारा प्राण, हमारी चेतना, हमारा संकल्प शांतिकुंज में सतत क्रियाशील रहेगा। जो परिजन इसका लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें ही शांतिकुंज बुलाया जाए। उजड्ड, बीमार, अशिक्षितों को नहीं। प्रतिभावानों को यहाँ आमंत्रित किया जाए। वे बार-बार कहते रहे हैं—"**यह धर्मशाला नहीं है। यह कॉलेज है, विश्वविद्यालय है। कायाकल्प के लिए बनी एक अकादमी है। हमारे सतयुगी सपनों का महल है।**"

शांतिकुंज में संजीवनी साधना सत्र, युगशिल्पी प्रशिक्षण सत्र, परिव्राजक प्रशिक्षण सत्र, संगीत प्रशिक्षण सत्र, अंत:ऊर्जा जागरण सत्र, स्वावलंबन प्रशिक्षण सत्र और देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विविध पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

वर्ष २०१३ में प्रायोगिक रूप में कुछ नए सत्र प्रारंभ किए गए थे। जिसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। सत्रों की सफलता और बनी हुई माँग को मद्देनजर रखते हुए निम्न सत्रों को सितंबर माह से पूर्व वर्ष की तरह २०१४-१५ में भी जारी रखा जाएगा।

**जीवन प्रबंधन ( ०१ से ०५ ), आपदा प्रबंधन ( ०१ से ०५ ), राष्ट्र जागरण पुरोहित प्रशिक्षण ( ०६ से १५ )**
**नारी जागरण ( १६ से २० ), बालसंस्कार शाला प्रशिक्षक प्रशिक्षण ( २१ से २५ ), युवा चेतना जागरण ( २६ से ३० )**

इसके अतिरिक्त कुछ नए सत्रों का प्रस्ताव है, जो निम्न हैं—

**( १ ) मंडल संचालन प्रशिक्षण सत्र ( २ ) युगधर्म साधना सत्र ( क्रांतिधर्मी साहित्य आधारित )**
**( ३ ) स्वास्थ्य संवर्द्धन एवं जागरूकता शिविर**

संपर्क सूत्र : शिक्षण-प्रशिक्षण विभाग, शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखंड)

( Online - www.awgp.org, email - shivir@awgp.org मोबा० ९२५८३६९७४९-९२५८३६०६५५)

# जीवन जिएँ सही जीवनदृष्टि के साथ

जिंदगी तो सभी जीते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं कि सभी सही शुरुआत के साथ, सही तरीके से, सही लक्ष्य के लिए जिंदगी जी रहे हों। सही और सच्ची जिंदगी के लिए आवश्यक है कि इसकी शुरुआत सही हो। सही शुरुआत से चूक जाने का तात्पर्य है जिंदगी से चूक जाना। अब प्रश्न है कि जिंदगी की सही शुरुआत कहाँ से करें? कैसे करें? तो सभी के लिए इसका एक ही सूत्र है—"जीवनदृष्टि का विकास। जब तक जीवनदृष्टि विकसित नहीं होती, स्वयं के प्रति नजरिया स्पष्ट नहीं होता, तब तक जिंदगी की सही शुरुआत संभव नहीं है। जीवनदृष्टि का संबंध हमारी सोचने और समझने की अंत:प्रवृत्तियों से है और हमारे मन व चित्त-संस्कारों की प्रकृति से है। इसके साथ ही जिस परिवेश में हम रहते हैं व जिन आदर्शों को हम जीते हैं, वे भी हमारी जीवनदृष्टि को अत्यंत प्रभावित करते हैं।

जीवनदृष्टि का निर्माण उन एहसासों से होता है, जिन्हें हम स्वयं के प्रति तथा अपने समाज, संबंधों व परिवेश से जुड़ी संवेदनशीलता के द्वारा ग्रहण करते हैं। यह संवेदनशीलता जैसे-जैसे गहरी होती जाती है, वैसे-वैसे हमारे एहसास तीव्र होते जाते हैं और हमारे नजरिये को प्रभावित करते हैं। एहसासों के तीव्र और सघन होने पर हमारी जीवनदृष्टि में भी सूक्ष्मता, पैनापन और स्पष्टता विकसित होती चली जाती है। ऐसी सुविकसित जीवनदृष्टि के प्रकाश में ही हम जिंदगी की सही शुरुआत कर सकते हैं।

एक सफल जीवन जीने के लिए सच्चा और कुशल मार्गदर्शन केवल विकसित जीवनदृष्टि से ही प्राप्त होता है। हमारे जीवन में इसे गढ़ने वाले प्रेरक-कारक् तत्त्व चाहे जो भी हों, किंतु जीवनदृष्टि ही वह तत्त्व है, जो हमें सही जीवन लक्ष्य का बोध कराती है। एक बार यदि इसकी उपलब्धि हो जाए, इसका प्रकाश आत्मचेतना के केंद्र से जुड़ जाए तो फिर स्वयं और संसार के जीवन का सच समझने में देर नहीं लगती। मन-भावों पर छाया सारा तमस्, सब अनजानापन, सारी भ्रांतियाँ इसके प्रकाश में तिरोहित हो जाती हैं। जीवन चेतना में एक नई क्रांति, एक नए प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया घटित होने लगती है। ऐसे, जैसे इस जीवन ने फिर से जन्म लिया हो, भीतर और बाहर सभी जगह, सब कुछ नया, स्पष्ट और व्यापक दीखने लगता है।

एक बार परमपूज्य गुरुदेव से संगोष्ठी वार्ता में एक जिज्ञासु साधक ने पूछा—"गुरुदेव! आप सादा जीवन उच्च विचार की बात कहते हैं और स्वयं जीते भी हैं, परंतु पूज्यवर मेरी जिज्ञासा यह है कि इस आदर्श को जीवन में अपनाने के बाद व्यक्ति को क्या उपलब्धि मिलेगी?" गुरुदेव कुछ पल शांत, मौन बने रहे और फिर साधक की ओर देखते हुए गंभीर भाव में बोले—"यह सूत्र सच्चा जीवन मंत्र है। इसकी सिद्धि होने पर साधक को इस संसार की सबसे कीमती चीज की उपलब्धि होती है, जिसका नाम है—संतुष्टि। सादा जीवन उच्च विचार एक उत्कृष्ट जीवनपद्धति है; श्रेष्ठतम जीवन का आदर्श है; सार्थक और संतुष्टिपूर्ण जीवन की राह है—आदर्श जीवनदृष्टि है।"

यह एक अनुभवजन्य सत्य है कि इस संसार में, जिसके जीवन में आदर्श जीवनदृष्टि का साथ है, उसका जीवन नित नई सफलताओं के शिखर गढ़ता हुआ संतुष्टि के अथाह समुद्र में आश्रय प्राप्त करता है; क्योंकि जीवनदृष्टि का होना और असंतुष्टि का भाव होना, दोनों एक साथ असंभव हैं। जहाँ जिसकी जीवनदृष्टि विकसित है; जीवन की डोर आदर्शों से बँधी है; वहाँ उसके जीवन में असफलता और असंतुष्टि का कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। जीवनदृष्टि यदि सच्ची हो, विकसित हो तो सुनिश्चित रूप से सफल, सार्थक और संतुष्ट जीवन का निर्माण करती है।

परमपूज्य गुरुदेव के विचारों में जीवनदृष्टि के विकास की दो अत्यंत व्यावहारिक तकनीकें मौजूद हैं।

पहली आत्ममूल्यांकन से व दूसरी भावनात्मक विकास से संबद्ध है।

आत्ममूल्यांकन की प्रक्रिया को हम उनके शब्दों में आत्मबोध और तत्त्वबोध की साधना के रूप में समझ सकते हैं। प्रातः और रात्रि अर्थात उठने और सोने के समय की न्यूनतम दो-दो मिनट की इस साधना को सबसे सरल और चमत्कारी समझना चाहिए। नियमित करने वालों को कुछ ही दिनों में इसके लाभ प्रत्यक्ष होने लगते हैं। अखण्ड ज्योति के पिछले कई अंकों में इसकी विस्तार से चर्चा हो चुकी है। यहाँ तो सिर्फ इतना कहना है कि गुरुदेव द्वारा सुझाई गई ये साधना आत्ममूल्यांकन की सभी प्रक्रियाओं में सबसे कारगर और प्रभावशाली तकनीक है।

हमारे शरीर-संचालन की प्रक्रिया में जो महत्त्व नेत्रों का है, वही महत्त्व जीवन की गतिशीलता में आत्ममूल्यांकन का है। नेत्र यदि बंद हों तो आस-पास के सभी दृश्य, वस्तुएँ अंधकार के गर्त में छिपे रहते हैं, परंतु नेत्र खुलते ही सब प्रत्यक्ष स्पष्ट दीखने लगते हैं। ठीक ऐसे ही आत्ममूल्यांकन के बगैर हमारी जिंदगी की सब क्षमताएँ, विशेषताएँ भीतरी तमस् के अंधकार में सुप्त पड़ी रहती हैं। लेकिन जब आत्ममूल्यांकन रूपी मनोनेत्र से हम स्वयं को देखते हैं तो हमें भीतर की सभी विशेषताएँ, योग्यताएँ और अनेक विभूतियाँ दिखाई पड़ने लगती हैं।

अपने ही भीतर अपने आपे का नया परिचय, नया जीवन दीखने लगता है। वस्तुतः यही हमारा सच्चा परिचय—सच्चा जीवन होता है, जिसे हम केवल आत्म-मूल्यांकन के मार्ग पर चलकर ही प्राप्त कर सकते हैं। आत्ममूल्यांकन की प्रक्रिया सही जीवनदृष्टि के विकास का प्रथम और अनिवार्य पहलू है। संक्षेप में कहें तो आत्ममूल्यांकन से ही जीवनदृष्टि का आरंभ होता है।

जीवनदृष्टि के विकास की तकनीक में दूसरा क्रम भावनात्मक विकास का है। भावनाएँ तो सभी में हैं, परंतु इनका दायरा अत्यंत सीमित व संकीर्ण होता है। भावनात्मक संकीर्णता हमारी जीवनदृष्टि को बौना बनाती है, अतः इससे उबरकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। पूज्य गुरुदेव के सूत्रों में नियमित उपासना हमारे भावनात्मक विकास को शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है। रुचि और परिस्थिति के अनुसार जितने भी समय की उपासना संभव हो; किंतु वह हो नियमित, तो इसका हमारी भाव-संवेदना पर चमत्कारी प्रभाव पड़ता है। पर हाँ! यहाँ उपासना का तात्पर्य मात्र कुछ पूजा-पाठ, कर्मकांड न होकर अपने इष्ट-आराध्य के श्रेष्ठ गुणों अथवा श्रेष्ठतम विचारों, भावों, व्यक्तित्वों का नियत, नियमित सान्निध्य है। ऐसी उपासना से ही हमारी भावनाएँ परिशोधित होती हैं और इस परिष्कृत और विस्तृत भाव-संवेदना से ही हमारी जीवनदृष्टि में गहनता, दूरदर्शिता और मजबूती आती है। साथ में उपासना का आध्यात्मिक लाभ तो होता ही है।

आत्मबोध व तत्त्वबोध से हम अपना सच्चा परिचय पाते हैं, स्वयं का नजरिया पैदा करते हैं व जीवनदृष्टि का अपने भीतर बीजारोपण करते हैं और नियमित उपासना के जल से इस जीवनदृष्टि का सिंचन कर उसे विकसित और व्यापक बनाते हैं। इस तरह आत्ममूल्यांकन और भाव-संवेदना के विकास की समन्वयात्मक तकनीकें अपनाकर ही हम अपनी सच्ची जीवनदृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। तो फिर क्यों न हम जीवनदृष्टि के विकास हेतु पूज्यवर की बताई तकनीकों पर आज से ही चलना प्रारंभ कर दें।

**हमारे जीवन के क्रियाकलापों के पीछे उसके प्रयोजन को कभी कोई ढूँढ़ना चाहे तो उसे इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि संत और सज्जनों की सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों का जितने क्षण स्मरण-दर्शन होता रहा, उतने समय चैन की साँस ली और जब जनमानस की व्यथा-वेदनाओं को सामने खड़ा पाया तो अपनी निज की पीड़ा से अधिक कष्ट अनुभव हुआ।**

*— परमपूज्य गुरुदेव*

# जगन्माता के प्रति जाग्रति ही है सर्वोत्कृष्ट साधना

आदिशक्ति की लीलाकथा जगन्माता के स्वरूप का, उनके प्रभाव व उनकी कृपा का परिचय कराती है। जीवन में हमारा परिचय सजीव-निर्जीव तत्त्वों से होता है। प्राय: नित्य ही किसी नए तत्त्व से, नए सत्य से परिचित होते हैं। अगर अपरिचित रह जाते हैं तो केवल अपने-आपसे एवं करुणामयी माता से। इस अपरिचय के कारण ही हमारे जीवन में दु:ख है, दरिद्रता है, दीनता है, दुर्भाग्य है। इनमें से प्रत्येक का कारण खोजने का हम प्रयास करते हैं, लेकिन खोज की दिशा सही न होने के कारण निराशा हाथ लगती है। दिशा के गलत होने के कारण कभी तो हम अपनी पीड़ा-परेशानी का कारण ग्रह-नक्षत्रों में खोजते हैं, तो कभी इसके लिए परिस्थितियों, घटनाक्रमों व किसी अन्य को दोषी ठहराते हैं। इस तरह से अपनी अज्ञानता किसी अन्य के मत्थे मढ़ने की रस्म तो पूरी हो जाती है, लेकिन समस्या यथावत् बनी रहती है। उसका न तो समाधान होता है और न ही निवारण-निराकरण।

इसका सही समाधान तो स्वयं का और परमेश्वरी का परिचय है। इनके साथ अपने संबंधों का परिचय है। जब तक ऐसा नहीं हो पाता, परिस्थितियों में परिवर्तन का कोई सुयोग कभी भी न बन पड़ेगा। परेशानियाँ व पीड़ाएँ जस की तस बनी रहेंगी। साधना व समाधान के लिए कितने ही प्रयास क्यों न किए जाएँ, पर अटकन-भटकन यथावत् रहती है। इनसे उबरना तभी संभव है। जब जगन्माता का परिचय हो। उनके व अपने स्नेह संबंधों का स्मरण हो।

आदिशक्ति की लीलाकथा की पिछली कड़ी में महाराज सुरथ की इसी जिज्ञासा का उल्लेख किया गया था। इस प्रकरण में राजा सुरथ ने महर्षि मेधा से पूछा था—"हे भगवन्! जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वह देवी कौन हैं?" बड़े पुण्य के प्रभाव से हो पाती है ऐसी जिज्ञासा। अन्यथा दिशाहीन जीवन तो यों ही अर्थविहीन बना रहता है। अंतश्चेतना में न तो जिज्ञासा के अंकुर फूटते हैं, न जीवन को सही विधियाँ मिलती हैं। सही विधियों के अभाव में सम्यक बोध होगा भी तो कैसे?

आदिशक्ति की लीलाकथा के इस अगले मंत्र में महाराज सुरथ अपनी जिज्ञासा के इसी प्रकरण को आगे बढ़ाते हैं—

**ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज।**
**यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥** १/१/६१॥

**अर्थ**= ब्रह्मन्! उनका आविर्भाव कैसे हुआ तथा उनके चरित्र कौन-कौन से हैं? उन देवी का जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मुझसे कहिए?

भक्त कवि का काव्यानुवाद—

**क्या स्वभाव है उस देवी का, क्या स्वरूप कैसी उत्पत्ति।**
**हूँ चाहता सुनूँ सब तुमसे, हो न किंतु इसमें आपत्ति॥**

आदिशक्ति की लीलाकथा का यह मंत्र जीवन को महामाया के स्वरूप के प्रति उन्मुख, जाग्रत, सचेत व सचेष्ट करता है। जीवन में विसंगतियाँ, विकृतियाँ व दु:ख, दैन्य, दुराशा व दुर्भाग्य के बादल तभी तक हैं, जब तक जीवन भगवती के प्रति उन्मुख नहीं है। साधना के स्वरूप व प्रकार अनेक हैं, पर उनमें सबसे प्रभावी है—जगन्माता के प्रति जाग्रति, उन्हें पुकारना, उनमें स्वयं के मन को लीन करना।

इस तत्त्व का सत्य बोध कराने वाली एक वेद कथा है। इस कथा का संबंध महर्षि अंभृण से है। कथा कहती है कि ऋषि अंभृण का प्रारंभिक जीवन अनेक कठिनाइयों से घिरा था। उनके माता-पिता भी बचपन के दिनों में ही चले गए। माता-पिता विहीन जीवन कैसा होता है, इसे तो केवल भुक्तभोगी ही जानते हैं। जब उन्हें पीड़ा सताती, कष्टों का अतिरेक होता, तब वह माँ-माँ पुकार लेते। इस तरह से पुकारने पर उन्हें बड़ी शांति मिलती, संतोष का अनुभव होता। हालाँकि इस अनुभूति के साथ उनमें यह कसक भी उठती कि यदि सचमुच में मेरी माँ मेरे साथ होती। अपनी इसी कसक के साथ वह जहाँ-तहाँ भटकते रहते। माता-पिता के न रहने के कारण घर तो उनका था नहीं। बस, इधर-उधर भटकते हुए उन्हें जो मिल जाता, खा लेते, जहाँ स्थान मिलता सो जाते।

अपने इन्हीं भटकन के दिनों में उनकी भेंट महर्षि विभांडक से हो गई। ऋषि विभांडक ने उन्हें देखा और देखते ही उनके उच्च संस्कारों को पहचान लिया। अंभृण की आत्मा के प्रकाश से परिचित होकर उन्होंने उन्हें पास बुलाया और पूछा—''तुम कहाँ रहते हो वत्स?'' उत्तर में अंभृण ने कहा—''मेरी माँ नहीं है, इसलिए मेरा कोई घर नहीं है।'' विभांडक ने उनसे पुनः जानना चाहा—''क्या तुम विद्याध्ययन करोगे?'' प्रश्न के उत्तर में अंभृण ने प्रश्न किया—''तब क्या इससे मेरी माँ मुझे मिल जाएगी?'' विभांडक ने एक बार पुनः उन्हें टटोला—''तुम करना क्या चाहते हो पुत्र?'' उत्तर में अंभृण ने उनसे कहा—''मैं तो बस, माँ से मिलना चाहता हूँ। आप मुझे माँ से मिला दीजिए, फिर आप जो कहेंगे, सब कर लूँगा।''

इतनी कसक, इतनी तड़प, इतनी विकलता माँ से मिलने के लिए। विभांडक को उन पर दया आ गई। उन्होंने विचार किया, यह बालक संस्कारवान है, निष्कपट, निश्छल व सरल चित्त है। यह निस्संदेह साधना का अधिकारी है। जगन्माता की कृपा पाने का उचित व उपयुक्त पात्र है। यह विचार करके उन्होंने अंभृण से कहा—''पुत्र! क्या तुम माँ से मिलने के लिए प्रत्येक कष्ट सहने के लिए तैयार हो?'' ''निश्चित ही''—इस उत्तर के साथ अंभृण के मुख पर बड़ी अनोखी दृढ़ता थी, जिसे विभांडक ने अपने हृदय में अनुभव किया। इस अनुभूति के साथ उन्होंने अंभृण को उसी क्षण स्नान आदि कृत्य करके पवित्र होने को कहा। उनका यह आदेश सुनकर एक आशा की लहर बालक अंभृण में दौड़ गई। इसके पश्चात ऋषि विभांडक ने निश्चित विधियाँ पूर्ण करते हुए अपने सामने बैठे इस बालक का यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न किया।

दर-बदर ठोकरें खाते हुए भटकने वाला यह बालक अब ब्रह्मचर्य व्रत एवं गायत्री मंत्र में दीक्षित हो चुका था। इसके बाद तो आवश्यकता थी बस, उसके कठिन तप, माँ के प्रति तीव्र प्रेम के साथ श्रद्धा व समर्पण की। ये सभी उसमें पूरी तरह से विद्यमान थे। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसने अपनी साधना प्रारंभ कर दी। घड़ी-पल-दिवस-रात्रि-मास-अयन व वर्ष बीतने लगे। साथ ही उसके तप की तत्परता व तीव्रता भी बढ़ती गई। साधना के साथ ही उसका मन उत्तरोत्तर स्थिर, शांत व एकाग्र होता गया। गायत्री महामंत्र अब उसके लिए अक्षरों व शब्दों का समुच्चय नहीं रह गया। इसमें उसके प्राणों की घुलनशीलता के साथ निरंतर घुलते जा रहे उसके वेगपूर्ण श्रद्धा व समर्पण ने इसे चैतन्य कर दिया। इस प्रक्रिया में उसका बालपन-किशोरावस्था में बदला व किशोरवय यौवन में परिवर्तित हो गई। इस बीच ऋषि विभांडक ने भी उसकी कई परीक्षाएँ ले लीं।

यह सब होते-होते चौबीस वर्ष की कठिनताएँ गुजर गईं। एक दिवस दोपहर में ऋषि विभांडक पर्वत-शृंखलाओं के बीच एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। उनके साथ उनका शिष्य समुदाय भी बैठा था। अचानक उनके मन में आया क्यों न अंभृण की अंतिम परीक्षा भी पूरी कर ली जाए। अब तो इसका तप भी पूर्ण हो चुका है। इन्हीं बातों को सोचकर उन्होंने अंभृण से कहा—''वत्स! पर्वत के नीचे जो नदी बह रही है, उस पर इस वृक्ष की शाखा के पत्ते गिरते रहते हैं। क्या तुम इसे काट सकते हो?'' अंभृण ने तत्काल उत्तर दिया—''आपकी जैसी आज्ञा।'' इस पर विभांडक ने कहा—''लेकिन शाखा को काटते समय तुम शाखा के दूसरे छोर पर बैठोगे और तुम्हारा मुख वृक्ष की ओर रहेगा।'' वहाँ पर बैठे अन्य शिष्यों ने कहा—''लेकिन ऐसे में तो अंभृण शाखा के कटते ही गहरी नदी में जा गिरेगा।'' ''हाँ! सो तो है''—विभांडक ने बड़े निर्लेप भाव से कह दिया।

सभी की बातों को सुनकर भी अंभृण का निश्चय दृढ़ था। उसने गुरु आज्ञा का यथावत् पालन किया, जैसा ऋषि विभांडक ने कहा था, ठीक वैसे ही वह डाल काटने लगे। थोड़ी ही देर में ज्यों ही पेड़ की डाल आधी से अधिक कटी, वह नदी में जा गिरी और उसके साथ में अंभृण भी। उनके सभी साथी-सहपाठी हतप्रभ थे। इधर विभांडक ऋषि शांत-मौन बैठे थे। उनके चेहरे के भाव देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो।

गुरु आज्ञा का अनुसरण करने वाले अंभृण को उनकी गुरुभक्ति एवं तप-साधना का सुफल नदी में गिरने से पहले ही मिल गया था। आदिशक्ति माता गायत्री ने उन्हें अपनी गोद में उठा लिया था। माँ के प्यार को तरसने वाले अंभृण पर जगन्माता का भरपूर प्यार बरस रहा था। अंभृण सुखद आश्चर्य से पुलकित थे। जगन्माता का स्वरूप, प्रभाव उनके सामने स्पष्ट हो रहा था। ज्ञान की सभी विधियाँ व बोध उनके अंतःकरण में पलभर में प्रकाशित हो उठे। थोड़ी ही देर में भगवती की कृपा से

वह ऋषि विभांडक के पास पहुँच गए। उनकी प्रसन्नता व पुलकन ने अनकहे ही सारी कथा कह दी। बाद में उन्होंने इसका विस्तार अन्य जनों को कह सुनाया। माता की महिमा व गुरुकृपा को अनुभव कर सभी ने आह्लाद को अनुभव किया।

इस मंत्र में निहित इन आध्यात्मिक-दार्शनिक भावों के साथ इसका अपना विशिष्ट साधना-विधान है, जो निम्न है—

## ॥ साधना-विधान ॥

**विनियोगः-ॐ अस्य श्री 'ब्रवीति कथमुत्पन्ना' इति सप्तशती एकषष्टि मन्त्रस्य श्रीसुरथऋषिः, श्रीमहाकालीदेवता, क्रूं बीजम्, भैरवीशक्तिः, श्रीभैरवीमहाविद्या, रजोगुणः, रसनाज्ञानेन्द्रियं, मृदुरसः, वाक्कर्मेन्द्रियं, सौम्यस्वरं, जलतत्त्वं, प्रतिष्ठाकला, स्फ्रीं उत्कीलनं, सम्पुटमुद्रा, ममज्ञानभक्तिवैराग्यपूर्वकं, क्षेमस्थैर्यायुरारोग्याभिवृद्ध्यर्थं श्रीआदिशक्ति वेदमाता गायत्री रूपेण श्रीजगदम्बायोगमाया भगवतीदुर्गाप्रसाद सिद्ध्यर्थं च नमोयुत प्रणव वाग्बीज, स्वबीज, लोम-विलोम पुटितोक्त एकषष्टि मन्त्र जपे विनियोगः।**

## ॥ न्यासः ॥

| | कर न्यासः | षडंग न्यासः |
|---|---|---|
| ॐ ऐं क्रं | अंगुष्ठाभ्यां नमः | हृदयाय नमः |
| नमो नमः | तर्जनीभ्यां नमः | शिरसे स्वाहा |
| ब्रवीति कथमुत्पन्ना | मध्यमाभ्यां नमः | शिखायै वषट् |
| सा कर्मास्याश्च किं द्विज | अनामिकाभ्यां नमः | कवचाय हुम् |
| यत्प्रभावा च सा देवी | कनिष्ठिकाभ्यां नमः | नेत्रत्रयाय वौषट् |
| यत् स्वरूपा यदुद्भवा | करतल करपृष्ठाभ्यां नमः | अस्त्राय फट् |

## ॥ ध्यानम् ॥

चन्द्रावतंस-कलिताम्बु धरस्य श्यामाम्;
पञ्चाशदक्षर-मयीं हृदि क्लृप्तवन्तीम्।
त्वां पुस्तकं जप-वटीममृताम्भ-कुम्भाम,
व्याख्या च हस्त कमलैदधितीं भजेम्॥

## ॥ मन्त्र ॥

ॐ ऐं क्रं नमः
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥
नमो क्रं ऐं ॐ॥ ६१॥

**१००० जपात् सिद्धिः — घृतेन दशांश होमः।**

**गायत्री महामंत्र जप १०,०००—गायत्री विधानेन दशांश होमः।**

**१० माला गायत्री, १ माला सप्तशती मंत्र। इस तरह से १० दिन का विधान। तदुपरांत प्रत्येक का दशांश हवन।**

**आध्यात्मिक फलश्रुति**—महामाया के स्वरूप के प्रति जिज्ञासा का जागरण।

**लौकिक फलश्रुति**—जगदंबा की कृपा प्राप्ति।

गायत्री महामंत्र के साथ इस सप्तशती मंत्र की साधना के प्रभाव बड़े तीव्र व त्वरित होते हैं। साधना के प्रति साधक की श्रद्धा व समर्पण उसे भगवती की कृपा के प्रति उन्मुख करते हैं। जैसे-जैसे साधक की चेतना में मंत्रशक्ति का परिपाक होता है, वैसे-वैसे उसके अनुभव भी परिपक्व होते हैं। साथ ही उसको होने लगती है माता की कृपा की अनुभूति। इसी के साथ जीवन के संकटों का शमन होता है। एहसास होने लगता है नई सुबह के आगमन का। उज्ज्वल जीवन की स्वर्णिम आभा स्वतः प्रकट होने लगती है।


**फार्म—४**

| | |
|---|---|
| (१) प्रकाशन स्थान | मथुरा |
| (२) प्रकाशन अवधि | मासिक |
| (३) मुद्रक का नाम | मृत्युंजय शर्मा |
| क्या भारत का नागरिक है | हाँ |
| पता | जनजागरण प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा |
| (४) प्रकाशक का नाम | मृत्युंजय शर्मा |
| (५) संपादक का नाम | डॉ० प्रणव पंड्या |
| क्या भारत का नागरिक है | हाँ |
| पता | शांतिकुंज, हरिद्वार |
| (६) उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों। | मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा (उ० प्र०) |

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक २८-२-२०१४ मृत्युंजय शर्मा

# भावुक नहीं, भावनाशील बनें

भावनाएँ मनुष्य जीवन से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं और ये हमारे जीवन को भी हर क्षण-प्रतिपल प्रभावित करती हैं। इनका हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावनाएँ ही सच्चे अर्थों में मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ती हैं। भावनाओं की परिपक्वता के आधार पर ही व्यक्तित्व, परिपक्व व विकसित होता है और भावनाओं की अपरिपक्वता ही व्यक्ति को कमजोर व रुग्ण मन:स्थिति का बना देती है। जिस रूप में हमारी भावनाएँ होती हैं, उनकी अभिव्यक्ति भी उसी रूप में होती है। सकारात्मक भावनाएँ जहाँ हर्ष, प्रसन्नता, उत्साह, उमंग, साहस, संतोष व आत्मविश्वास के रूप में अभिव्यक्त होती हैं, वहीं नकारात्मक भावनाएँ ईर्ष्या, द्वेष, दु:ख, असंतोष, चिंता, आत्महीनता, असुरक्षा आदि के रूप में प्रकट होती हैं। हमारी भावनाएँ चाहे जैसी भी हों, लेकिन उनका प्रभाव हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

भावनाएँ यदि अपरिपक्व स्थिति में हैं, तो ऐसे लोग अत्यंत भावुक प्रकृति के होते हैं। अपने निर्णय स्वयं नहीं ले पाते। थोड़े से दु:ख में बहुत दुखी और जरा-सी खुशी में बहुत खुश हो जाते हैं। जीवन में आने वाली थोड़ी-बहुत परेशानियाँ इन्हें बहुत विचलित कर देती हैं और कठिनाइयों के सामने तो ये हार मानकर बैठ जाते हैं। भावनात्मक रूप से अपरिपक्व लोग थोड़ी विषम परिस्थितियों में ही विचलित हो जाते हैं। इनमें स्थिरता, एकाग्रता बहुत कम होती है, ये अधिकतर द्वंद्व की स्थिति में होते हैं और कभी-कभी कुंठाग्रस्त भी होते हैं। इनमें आत्महीनता व असुरक्षा की भावना अधिक होती है। ऐसे लोग ही भावनाओं के आवेग में आकर कभी-कभी आत्मघाती कदम भी उठा लेते हैं।

भावनात्मक रूप से अपरिपक्व व्यक्तियों के जीवन में यदि कोई बड़ा दु:ख आता है, तो वे उसे सहन नहीं कर पाते और जीवन से हार मान बैठते हैं। अपने ही सोच के सीमित दायरे में परिस्थितियों व घटनाओं को ये सही-गलत मान लेते हैं और यथार्थ को जानने का प्रयास नहीं करते। भावनात्मक रूप से अपरिपक्व व्यक्तियों के अंदर सकारात्मक भावनाओं के साथ-साथ नकारात्मक भावनाएँ भी अधिक पोषित होती हैं और अपना प्रभाव डालती हैं। जैसे—ईर्ष्या करने वाले लोगों की भावनाएँ उनकी प्रसन्नता व स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाती हैं। ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति न तो स्वयं खुश रह पाता है और न दूसरों को खुश रहने देता है।

भावनाओं में बहकर कभी भी अपने जीवन के निर्णय नहीं लेना चाहिए; क्योंकि ऐसी नाजुक मन:स्थिति में लिए गए निर्णय भविष्य के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध होते हैं। दूसरों से बदला लेने, हानि पहुँचाने व द्वेष जैसी भावनाएँ ऐसी हैं, जो व्यक्ति की कार्य शक्तियों को समाप्त कर उसकी प्रगति के मार्ग में बाधक बनती हैं और ऐसी भावनाओं वाला व्यक्ति जीवन में कभी सफल नहीं हो पाता।

इस तरह नकारात्मक भावनाएँ हमारे शरीर के स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। यदि इन भावनाओं पर हम अपना नियंत्रण करना सीखें और इन्हें सकारात्मक रूप दें तो ये हमारे लिए स्वास्थ्यवर्द्धक होने के साथ-साथ अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण में भी सहायक होंगी और इससे हमारी भावनाओं का विकास भी होगा।

भावनाओं पर नियंत्रण पाने के लिए हमें अपने जीवन में कठोर श्रम करना चाहिए और उससे मिलने वाले परिणामों को स्वीकारना चाहिए। यदि परिणाम हमारी आशा के अनुकूल हैं तो मन में भगवान के प्रति कृतज्ञता का भाव होना चाहिए और आशा के विपरीत होने पर अपनी कमियों पर ध्यान देकर, उन्हें सुधारना चाहिए।

अपने जीवन में अधिक से अधिक दूसरों की मदद करना चाहिए, यथासंभव सहायता के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए और बुजुर्गों की सेवा करनी चाहिए। नित्यप्रति अपने जीवन में कुछ न कुछ अच्छा पढ़ने की आदत डालनी चाहिए, इससे व्यक्ति सकारात्मक विचारों के संपर्क में रहता है और किताबों को पढ़ने से उसे दूसरों के अनुभवों के बारे में भी पता चलता है। अपने मन को

विभिन्न तरीकों से यथासंभव स्थिर, व एकाग्र करने की कोशिश करनी चाहिए। मन जितना अधिक स्थिर व एकाग्र होता है, अपनी भावनाओं पर व्यक्ति का उतना ही अधिक नियंत्रण होता है और इससे व्यक्ति की समझने की क्षमता का भी विकास होता है।

जिंदगी में मिलने वाली कठिनाइयों व संघर्षों से व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिए, बल्कि इनका सामना करना चाहिए; क्योंकि कठिनाइयाँ हमें निखारने के लिए आती हैं और हमें कुछ न कुछ अनुभव का उपहार देकर जाती हैं। भावनाओं में सबसे ज्यादा उथल-पुथल रिश्तों को निभाने में होती है। इसलिए अपने रिश्तों को विश्वास के धरातल पर परखना चाहिए और तब ही आगे बढ़ना चाहिए।

अपने जीवन में चाहे जितने भी रिश्ते हों, लेकिन एक रिश्ता भगवान से भी रखना चाहिए और अपने मन की हर बात को उनसे बताना चाहिए। यह संवाद भले ही एकतरफा होता है, लेकिन जिंदगी की बहुत सारी उलझनों को सुलझाता है। इससे हमारी भावनाओं को संबल मिलता है कि कहीं कोई है, जो हमारा ध्यान रखता है और मुसीबत के समय भी हमें गिरने नहीं देता, सँभाल लेता है। इसके साथ अपने कर्त्तव्य का पालन व प्रबल पुरुषार्थ करने से भी पीछे नहीं हटना चाहिए। जिंदगी स्वयं में एक शिक्षक की तरह है, जो हर कदम पर शिक्षण देती है और देर-सबेर हमें भावनाओं के स्वस्थ विकास में मदद करती है।

भावनाओं का स्वस्थ विकास होने से मनुष्य न केवल अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास कर पाता है, वरन औरों के जीवन को भी समग्रता से प्रभावित कर पाता है। परमपूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि ज्यादातर मनुष्य इस धरती पर रोते हुए आते हैं, शिकायतें करते हुए जीते हैं और पश्चाताप करते हुए जाते हैं, किंतु मात्र वही अपने जीवन में संतुष्टि प्राप्त कर पाते हैं, जो ऊँचे उद्देश्यों के लिए जीते हैं, समाज के लिए मरते हैं और ऐसे ही व्यक्ति भावनाशील कहलाते हैं। जीवन का सत्य यही है कि हम भावुक नहीं, भावनाशील बनें।

**पुन्नाग अपराध का पर्याय बन चुका था। प्राणियों को पीड़ित देखना ही मानो पुन्नाग का अभीष्ट था। उसे अपनी मातृविहीन पुत्री विपाशा से अत्यधिक स्नेह था। कुछ बड़ी होने पर विपाशा को अपने पिता के इन कुकृत्यों का पता लगा। एक दिन उसने अपने प्रिय मृगशावक को चोट के दरद से तड़पते देखा तो उसे एहसास हुआ कि उसके पिता ने अब तक न जाने कितनों को ऐसी अनगिनत पीड़ाओं के गह्वर में झोंका होगा।**

**पीड़ा को और भी गहराई से अनुभूत करने के लिए उसने पत्थर से अपने पैर को चोटिल कर लिया, हड्डी टूटते ही वह कराहने लगी। पुत्री के कष्ट की बात पता चलते ही पुन्नाग तुरंत आया और चीत्कारते हुए कहने लगा—"पुत्री! यह कैसे हो गया?" विपाशा ने उत्तर दिया—"पिताश्री! मैं देखना चाहती थी कि पीड़ा कैसी होती है, सुना है आप भी लोगों को कष्ट, पीड़ा दिया करते हैं।" इतना कहकर वह मौन हो गई और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। आज पुन्नाग को दुःख, पीड़ा का एहसास हुआ। उसने उसी दिन से लोगों को सताना बंद कर दिया और शेष जीवन पीड़ितों की पीड़ा को दूर करने में लगाना शुरू कर दिया।**

# घरेलू मसाले धनिया के औषधीय गुण

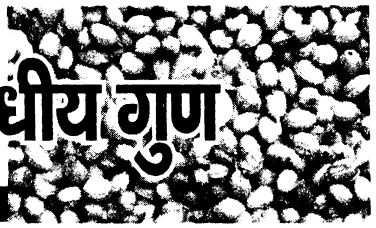

घर की रसोई किसी औषधालय से कम नहीं है। घर में प्रयुक्त किए जाने वाले मसाले अपने औषधीय गुणों के कारण घरेलू चिकित्सा में प्रयोग किए जा सकते हैं। मसालों की अपनी प्रकृति होती है। इसलिए उनके गुण व प्रकृति को जानना बहुत जरूरी है और इसी के आधार पर उनके माध्यम से चिकित्सा की जाती है। पहले हमारे देश में न तो बहुत सारे चिकित्सालय थे और न ही इतने चिकित्सक उपलब्ध थे, लेकिन घर के बुजुर्ग लोग रसोई के मसालों द्वारा ही ऐसे नुसखे जानते थे, जो रोगों का रामबाण इलाज करते थे। ऐसे ही मसालों में एक 'धनिया' है, जो हर घर में सब्जी में डालने के काम आता है, लेकिन यह अपने अंदर कई रोगों की चिकित्सा का औषधीय गुण रखता है।

धनिया की प्रकृति शीतल और खुश्क होती है। इसका गुण ठंढक पहुँचाना है। इसे बंद मुँह के बरतनों में ठंढे स्थानों में ही रखना चाहिए; क्योंकि खुले व गरम स्थानों पर रखा हुआ धनिया औषधि के रूप में प्रयुक्त किए जाने पर लाभ नहीं पहुँचाता। धनिया में एक ऐसा मिश्रण मौजूद है, जो खान-पान से जुड़ी बीमारियाँ व गंभीर बीमारियाँ पैदा करने वाले बैक्टीरिया साल्मोनेला से जूझने की क्षमता रखता है। धनिया के माध्यम से पाचन-क्रिया सुधरती है, यह अग्न्याशय (पेन्क्रियाज) की क्रिया को ठीक करता है, यह इन्सुलिन स्तर को सही करके मधुमेह व कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करता है।

भोजन में प्रयुक्त किए जाने वाले तरह-तरह के मसाले पाचक रस अधिक बनाते हैं, इससे पाचन-क्रिया का संतुलन बिगड़ जाता है, लेकिन धनिया मसाला होते हुए भी संतुलन नहीं बिगाड़ता। यह किसी भी प्रकार का दुष्प्रभाव पैदा नहीं करता, बल्कि यह भोजन पचाने में सहायक होता है। इसलिए सामान्यत: हर घर में सब्जी बनाने में मसाले के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

धनिये का प्रयोग शरीर की थकावट दूर करने में भी किया जाता है। काम करते हुए थकावट होने, यात्रा में पैदल चलने या चढ़ाई करने से थकावट होने पर बीस दाने सूखे धनिये के चबाएँ, इससे शरीर की थकावट दूर होगी। यात्रा के समय एक शीशी में सूखा साबुत धनिया भी रखें और थकावट दूर करने में इसका प्रयोग करें, इसके साथ ही पैरों को घुटनों तक ठंढे पानी में डुबाकर रखें, इससे पैरों की थकावट दूर करने में आसानी होगी और शरीर में स्फूर्ति आएगी। यदि शरीर में कमजोरी है, लेटे रहने का मन करता है, तो १० पत्ते तुलसी, चौथाई चम्मच सूखा धनिया, चार कालीमिर्च, स्वादानुसार चीनी एक गिलास पानी में उबालें। उबालकर आधा गिलास पानी रहने पर उसे छानकर सुबह-शाम पिएँ, इससे शरीर में शक्ति आएगी।

व्यक्ति को यदि अधिक जँभाइयाँ आती हों तो दो चम्मच धनिया एक लीटर पानी में उबालकर, फिर छानकर उससे चेहरा धोयें तथा एक चम्मच पिसा धनिया सुबह-शाम गरम पानी से फाँक लें। यदि व्यक्ति को नींद कम आती हो, तो हरा धनिया ५० ग्राम पीसकर उसमें २५ ग्राम बूरा या मिसरी व दो कप पानी मिलाकर नित्य तीन बार पीने से लाभ मिलता है। इससे नींद अच्छी आती है, आँखों के आगे अँधेरा आना व सिरदरद बंद हो जाता है। धनिये की चटनी खाने से भी अच्छी नींद आती है।

यदि शरीर में वात की समस्या है, अर्थात हड्डियों के जोड़ों में दरद होता है तो तीन भाग पिसा धनिया, एक भाग सोंठ मिलाकर शीशी में रख लें और सुबह-शाम इस मिश्रण का एक चम्मच लेकर एक चम्मच शहद के साथ मिलाकर चाटें, इससे दरद में आराम मिलेगा। वात-पित्त दोष दूर करने के लिए धनिया व सौंफ समान मात्रा में सेंककर-कूटकर मिला लें, इसका दो-दो चम्मच सुबह-शाम गरम पानी से फाँक लें, इससे वात-पित्त दोष शीघ्र दूर होंगे।

यदि मसूढ़े कमजोर हैं, उनसे खून आता है तो ५० ग्राम धनिया एक लीटर पानी में उबालकर उसे छानकर सुबह-शाम उससे कुल्ला करें, इससे मसूढ़ों से खून आना बंद हो जाएगा और वे शीघ्र स्वस्थ होंगे। यदि दस्त लग रहे हों व पेट में बहुत गैस बनती हो तो एक

चम्मच साबुत धनिया, एक चम्मच चीनी के साथ चबा-चबाकर खाएँ और बाद में पानी पी लें। इससे दस्त व पेट के रोगों में लाभ होगा। इसके अलावा रात में धनिया पानी में भिगोकर रख दें और प्रातः इसका पानी छानकर बूरा या शक्कर मिलाकर पी लें, इससे भी लाभ होगा। पाचन ठीक करने के लिए भोजन करने के बाद आधा चम्मच साबुत सूखा धनिया चबाएँ। इसको चबाने से निकलने वाले रस को निगलते जाएँ और अंत में छिलके बाहर निकाल दें। इससे पाचनशक्ति बढ़ेगी, खाया हुआ भोजन पच जाएगा और भूख अच्छी लगेगी।

यदि पेट में कब्ज हो तो दो चम्मच पिसा हुआ सूखा धनिया रात को पानी से फाँक लें, इससे पेट साफ होगा। आँत की कमजोरी, अपच, गैस व कब्ज दूर करने के लिए ५ ग्राम धनिया पाउडर में स्वादानुसार कालीमिर्च व नमक मिलाकर सुबह-शाम भोजन करने के बाद पानी से फाँक लें। पेटदरद व गैस से राहत पाने के लिए पिसा हुआ धनिया व मिसरी की समान मात्रा मिलाकर सुबह-शाम एक-एक चम्मच पानी के साथ फाँक लें, शीघ्र राहत मिलेगी।

यदि सिरदरद हो रहा हो तो चार चम्मच धनिया और दो चम्मच मिसरी एक गिलास पानी में उबालकर आधा पानी रहने पर छानकर पिएँ, इससे सरदी-जुकाम से उत्पन्न सिरदरद ठीक हो जाएगा। पिसे हुए सूखे धनिये में पानी डालकर, उसका लेप बनाकर सिर पर लगाने से माइग्रेन के दरद में शीघ्र राहत मिलती है। चक्कर आने पर बराबर मात्रा में धनिया व सौंफ पीसकर एक शीशी में रख लें और सुबह-शाम गरम पानी से फाँक लें, इससे आराम मिलेगा।

लू से बचने के लिए तीन चम्मच सूखा साबुत धनिया व दो चम्मच जीरा रात को एक गिलास में भिगोकर रख दें। प्रातःकाल इसे छानकर इसमें बूरा या मिसरी स्वादानुसार मिलाकर पीने से शरीर की गरमी निकल जाती है और मूत्र की जलन भी दूर होती है। जलन होने पर रात को चार चम्मच धनिया भिगो दें और प्रातः मिसरी डालकर इसे पीस करके छानकर पी लें, इससे लाभ होगा।

मौसम परिवर्तन के समय स्वस्थ रहने के लिए धनिया, पोदीना, अदरक, काली मिर्च और जीरा मिलाकर चटनी बनाकर खाएँ। यह मौसम परिवर्तन के दुष्प्रभाव से बचाता है। इस तरह और भी धनिया के बहुत से नुसखे हैं, जो रोगों के सामान्य उपचार में प्रयुक्त होते हैं। इन नुसखों का घरों में प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन इसके अतिवाद प्रयोग से बचा जाए।

प्रत्येक व्यक्ति की शरीर की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है, अतः इन नुसखों का प्रयोग शरीर की प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा प्रयोग करके देखा जा सकता है कि ये शरीर के लिए कितने लाभकारी हैं। इन नुसखों से तुरंत लाभ मिले, ऐसा कोई जरूरी नहीं। यदि कोई बीमारी लंबे समय से हो, तो लंबे समय तक नुसखों को आजमाना पड़ता है, लेकिन जब भी इन नुसखों का प्रयोग करें, रोगों के उपचार हेतु ली जाने वाली दवाओं का प्रयोग बंद न करें। यह बात जरूर है कि धनिया का सामान्य मात्रा में सेवन व प्रयोग व्यक्ति को नुकसान नहीं पहुँचाएगा, बल्कि शरीर को स्वस्थ रखने में मददगार होगा।

**वर्षा की फुहारों से धरती में से अनेक पौधे फूट पड़े। दुर्भाग्य से सब पौधे आपस में ही लड़ पड़े और उनमें से हरेक अपने को ज्यादा महत्त्वपूर्ण व उपयोगी बताने लगा। विवाद बढ़ता गया। छह माह ऐसे ही लड़ते-झगड़ते व्यतीत हो गए। ज्येष्ठ का आगमन हुआ तो उसके ताप से सारे पौधे सूख गए और जब बिछड़ने की घड़ी आई तो उन्हें अनुभव हुआ कि उन्होंने पूरी उम्र यों ही लड़ने-झगड़ने में व्यतीत कर दी। दुखी पौधों ने संकल्प लिया कि यदि पुनः अवसर मिला तो प्रेमपूर्वक रहेंगे। तब से पौधे हँसते-खेलते, सहयोग-सहकार से रहते हैं, मात्र इनसान ही इस छोटी-सी बात को समझ नहीं पाता।**

चैत्र नवरात्र पर्व

# गायत्री महामंत्र से आदिशक्ति की पूजा का पर्व

सारा देश नवरात्र में घर-घर शक्ति पूजा कर रहा है। कितना अचरज भरा सच है! शक्ति शब्द सुनते ही हमारे सामने एक नारी का रूप उभरता है, पुरुष का नहीं। उतना ही विलक्षण सच यह है कि उस नारी में हमें केवल और केवल माँ का रूप दिखाई देता है। जब-जब पुरुष ने शक्ति को उसके इस रूप से अलग भोग्या के रूप में देखा, तब-तब उसका परिणाम विनाशकारी ही रहा है। महिषासुर, भस्मासुर, शुंभ-निशुंभ, रावण और आज के समाज में भी इनके जैसे चरित्रों की एक लंबी सूची है। दूसरी ओर त्रिदेवों से लेकर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा वर्तमान युग में श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वयं परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे महान संतों ने शक्ति का आदर कर देवत्व व महानता की नई ऊँचाइयों को छुआ।

बात दरअसल यह है कि माँ एक प्रतीक है, जिसमें नारी शक्ति के प्रति सम्मान और आदर का भाव है; क्योंकि शक्ति केवल पुरुष की नहीं, बल्कि समस्त जगत की जननी है। वही जीवन की कोख है। यही कारण है कि आदिकाल से सभी युगों में, यहाँ तक कि आज के पुरुषप्रधान समाज में भी शक्ति का पर्याय सिर्फ स्त्री है, पुरुष नहीं। शक्ति का परिचय केवल संहार ही नहीं है। शक्ति संहारक तो तब होती है, जब हम मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं। तमाम प्राकृतिक आपदाएँ इसका प्रमाण हैं। जब-जब हमने पर्यावरण से खिलवाड़ किया है, तब-तब आदिशक्ति प्रकृति ने विध्वंस कर हमें चेताया कि हम अब भी नहीं सँभले तो महाप्रलय सुनिश्चित है।

शक्ति सदा सबको मर्यादा में रहने की सीख देती है; क्योंकि यह शक्ति जब मर्यादित होती है, तब अनोखे सृजन होते हैं। मर्यादा के अनुशासन में बँधकर बड़े-बड़े निर्माण के गौरव अनायास ही मिल जाते हैं, लेकिन शक्ति मर्यादा से मुक्त निरंकुश होती है, तो विनाश की लीलाएँ रची जाने लगती हैं। हमें यह सत्य समझना होगा कि शक्ति के आराधन, अर्चन व अर्जन के साथ मर्यादा का विस्तार व्यक्तिगत चरित्र के साथ राष्ट्रीय व सामाजिक चरित्र को पूज्यनीय, वंदनीय बना देता है।

हम सबके मार्गदर्शक परमपूज्य गुरुदेव ने संपूर्ण जीवन निष्ठापूर्वक आदिशक्ति वेदमाता गायत्री की आराधना की। अपने कठिन तप व भक्ति से उन्होंने वेदमाता गायत्री का युगशक्ति के रूप में अवतरण संभव किया, ताकि नवयुग की सृजनलीला का नवारंभ हो सके। नवयुग के शक्तिकेंद्र के रूप में जब उन्होंने शांतिकुंज की स्थापना की, तब परम वंदनीया माताजी को इसकी अधिष्ठात्र शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित व पूजित किया। हमें भी इस बात की सिखावन दी कि हम सब सामान्य क्रम में प्रतिदिन एवं विशेष क्रम में नवरात्र के दिनों में उस महाशक्ति वेदमाता गायत्री का आह्वान, आराधन व अर्चन करें। यही आदिशक्ति ब्रह्मा में ज्ञान रूप में सरस्वती बनकर, विष्णु में आह्लाद रूप में लक्ष्मी बनकर और शिव में महाऊर्जा रूप में महाकाली पार्वती बनकर विराजती हैं।

गायत्री की उपस्थिति ही विविध रूपों में समस्त ब्रह्मांड को अपनी चेतना से प्राणवान तथा ऊर्जावान बनाए हुए है। माँ हम पर नवरात्र के नौ दिनों में, नवसंवत्सर के सभी दिनों में व सबके जीवन भर के समस्त समय में अपनी कृपा बनाए रखें। आखिर उनकी कृपा ही तो ज्ञानशक्ति, विवेकशक्ति व सुखी-समृद्ध जीवन का आधार है। उनकी कृपा ही तो चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र के प्रत्येक अक्षर से प्रस्फुटित होती है। इनके नव शब्द नवीन चेतना का अनुदान देने में समर्थ हैं। आवश्यकता तो है बार-बार गायत्री मंत्र के अर्थचिंतन की। यह प्रक्रिया यदि निरंतर बनी रहे तो फिर माँ की अविरल कृपा में कभी कोई अवरोध नहीं आएगा।

चौबीस अक्षरों वाले गायत्री महामंत्र से तो हम गायत्री परिवार में शामिल होने से ही परिचित हैं, लेकिन इस परिचय को अर्थबोध में भी तो परिवर्तित होना चाहिए। **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ**। इस गायत्री मंत्र के पहले व अंत में ॐ का उच्चारण परमेश्वर का स्मरण एवं गुरु रूप परमेश्वर में समर्पण का द्योतक है। गायत्री मंत्र के प्रारंभ में ॐ का अर्थ है कि गायत्री-साधना का आरंभ

प्रभु स्मरण से हो और अंत में ॐ का अर्थ है कि साधना की समाप्ति गुरु व प्रभु में समर्पण से हो। मंत्र में भूर्भुवः स्वः प्रकृति की त्रिगुणमयी धारा तम्, रज व सत् के त्रिलोकव्यापी प्रवाह की ओर संकेत करता है।

इस तरह ॐकार व भूर्भुवः स्वः व्याहृतियों के अतिरिक्त गायत्री महामंत्र में तीन चरण, नौ शब्द एवं चौबीस अक्षर हैं। इनमें अनेकों गूढ़ताएँ निहित हैं। यह गायत्री ही दुर्गा है, जिसका उल्लेख गायत्री सहस्रनाम में, **दानवान्तकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी** (गायत्री महाविज्ञान, संयुक्त संस्करण, पृष्ठ २७१, श्लोक संख्या ७२) कहकर किया गया है। श्रीदुर्गासप्तशती प्रकारांतर से गायत्री महिमा का ही विस्तार है। इसके तीन चरित्र गायत्री महामंत्र के तीन चरण तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि एवं धियो यो नः प्रचोदयात् की कथा है। **तत्सवितुर्वरेण्यं** अर्थात तमस् के निवारण की महाशक्ति, जो गायत्री का महाकाली रूप है, **भर्गो देवस्य धीमहि** अर्थात आदिशक्ति के योग-ऐश्वर्य को धारण करने की क्षमता, जो भगवती का महालक्ष्मी रूप है। **धियो यो नः प्रचोदयात्,** ज्ञान के प्रकाशपथ पर चलने की प्रेरणा, जो गायत्री का महासरस्वती स्वरूप है।

इन तीन चरणों के पश्चात गायत्री महामंत्र के नौ शब्दों का क्रम है। यही श्रीदुर्गासप्तशती में वर्णित आदिशक्ति के नौ स्वरूप हैं—(१) तत्—यह भगवती का शैलपुत्री स्वरूप है। यह शक्तिसाधक के सुदृढ़ तन व स्थिर मन का प्रतीक है। यही समस्त साधना जीवन का आधार है। (२) सवितुः—यह शक्ति का ब्रह्मचारिणी स्वरूप है। यह साधक की ऊर्ध्वगामी चेतना की ओर संकेत करता है। (३) वरेण्यं—यही माता का चंद्रघंटा स्वरूप है। यह साधना क्रम में प्रकाशित प्रज्ञा के विकास का प्रमाण है। (४) भर्गो—यह माता का कूष्मांडा रूप है। इसके द्वारा साधना में दिव्य तेज धारण की क्षमता प्राप्त होती है।

इसके पश्चात (५) देवस्य—यह आदिशक्ति का स्कंदमाता स्वरूप है। इनकी कृपा से साधना-पथ में दिव्य जीवन आरंभ होता है। (६) धीमहि—यह माँ का कात्यायनी स्वरूप है। इनकी कृपा से साधना में अवरोधों को परास्त करने का पराक्रम प्राप्त होता है। (७) धियो—यही माता का कालरात्रि रूप है। इसके प्रभाव से चित्त के कर्म संस्कार व तमस् का संपूर्ण विनाश होता है। (८) यो नः—यह भवानी का महागौरी स्वरूप है। इसके प्रभाव से साधना क्रम में शुद्ध प्रकाशित व रूपांतरित चेतना प्राप्त होती है। गायत्री महामंत्र का अंतिम व नौवाँ शब्द है, (९) प्रचोदयात्—जो आदिशक्ति का सिद्धिदात्री रूप है। यह साधक को साधना की संपूर्णता का वरदान देती है।

गायत्री महामंत्र के इन नौ शब्दों के पश्चात २४ अक्षरों के अर्थचिंतन का क्रम आता है। इन चौबीस अक्षरों में मूल प्रकृति व उसके तेईस तत्त्व समाहित हैं। सांख्य दर्शन में प्रकारांतर में इन्हीं पर विचार किया गया है। इनकी गणना करें तो मूल प्रकृति स्वयं, महतत्त्व, अहंकार एवं पंच तन्मात्राएँ (शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श), पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश), दस इंद्रियाँ (पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, आँख, नाक, कान, जिह्वा एवं त्वचा) तथा पाँच कर्मेंद्रियाँ एवं मन। इस तरह से गायत्री महामंत्र में इसके चौबीस अक्षरों में मूल प्रकृति एवं उसके सभी तेईस तत्त्व समाविष्ट हैं।

श्रीदुर्गासप्तशती में इनकी चर्चा पाँचवें अध्याय में विस्तार से की गई है। इनकी गणना आरंभ करें तो गायत्री महामंत्र के पहले अक्षर (१) तत्—स्वयं आदिशक्ति परमा प्रकृति हैं। बाद में उनकी शक्तियों की चर्चा है। (२) स—यह विष्णुमाया है। (३) वि—इसका उल्लेख चेतना रूप में किया है। (४) तुर्—बुद्धि के रूप में इनका नमन हुआ है। (५) व—निद्रा रूप में इनकी चर्चा हुई है। (६) रे—क्षुधा रूप में यह प्राणियों में विराजती हैं। (७) णि—छाया रूप में इनकी उपस्थिति बताई है। (८) यं—शक्ति रूप में इनका नमन किया गया है। (९) भर्—तृष्णा रूप में यहाँ इनका उल्लेख हुआ है। (१०) गो- क्षांति अर्थात क्षमा रूप में यह अवस्थित हैं। (११) दे—जाति अर्थात वैश्विक तत्त्व के रूप में यह व्याप्त हैं। (१२) व—लज्जा रूप में यहाँ इनकी चर्चा हुई है। (१३) स्य—शांति के रूप में यह व्याप्त हैं। (१४) धी—श्रद्धा रूप में यह अवस्थित हैं। (१५) म—कांति रूप में यह विराजती हैं। (१६) हि—लक्ष्मी रूप में यह प्रकाशित होती हैं। (१७) धि—वृत्ति रूप में इनका उल्लेख किया गया है। (१८) यो—स्मृति रूप में इनका प्रकाश है। (१९) यो—दया रूप में यह अवष्ठित हैं। (२०) नः—तुष्टि रूप में यह उपस्थित हैं। (२१) प्र—मातृ रूप में यह सुखकारी हैं। (२२) चो—भ्रांति रूप में यह शक्ति कार्य करती हैं। (२३) द—इंद्रियों की अधिष्ठात्री के रूप में यह क्रियाशील हैं एवं (२४) यात्—चिति रूप में यह सर्वव्याप्त हैं। गायत्री महामंत्र के अर्थ चिंतन की व्यापकता का यह सांकेतिक रूप है। इसका विस्तार साधक की साधना में प्रकाशित होता है, बस, उसमें शक्ति को समझने की मर्यादा होनी चाहिए। ❀

# क्रोध से बचें

कोई यह माने या न माने, पर यह सच है कि किसी से दुर्भाव या मनमुटाव रखना व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक साबित हो सकता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति किसी को क्षमा कर देता है तो इसका उसके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ता है। हॉलैंड स्थित होप कॉलेज के शोधकर्त्ताओं ने इस बात की पुष्टि की है। इस कॉलेज में मनोविज्ञान विभाग के प्रो० वैन का कहना है कि उन्होंने अपनी विशेषज्ञ टीम के साथ एक हजार से अधिक लोगों पर परीक्षण करने के बाद ये नतीजे निकाले हैं। प्रो० वैन के अनुसार—जिन लोगों ने किसी के प्रति अपने दिल में भरी हुई नकारात्मक भावनाओं को निकाल दिया, तो उनका बढ़ा हुआ रक्तचाप दवाई के सेवन के बगैर ही स्वत: कम हो गया।

वैन की राय है कि नकारात्मक भावों, जैसे—प्रतिशोध, घृणा, तनाव, निराशा, क्रोध व आक्रोश का शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन नकारात्मक प्रवृत्तियों का हृदय पर कुछ ज्यादा ही प्रभाव पड़ता है। वैन का कहना है कि उच्च रक्तचाप के रोगियों को किसी के प्रति वैर भाव नहीं रखना चाहिए और गुस्सा करने से बचना चाहिए। लेकिन घर-परिवार में रहते हुए ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि व्यक्ति गुस्सा करता है। एक तो गुस्सा करना स्वभाव में आ जाता है और दूसरा परिस्थितियों के कारण गुस्सा आ जाता है। आंतरिक रूप से लगातार गुस्सा करने से मन में दुर्भाव आ जाता है।

मनुष्य का यह नैसर्गिक स्वभाव नहीं है कि वह गुस्सा करे, आक्रोश करे, वरन यह सब तो मानवीय स्वभाव की विकृतियाँ हैं। जिस तरह दर्पण में फूँक मारने पर वह धुँधला हो जाता है और उसमें चेहरा साफ दिखाई नहीं देता, वही स्थिति क्रोध के समय व्यक्ति की होती है। मन के दर्पण में क्रोधरूपी फूँक मारने से आत्मा (मन) का दर्पण धुँधला हो जाता है और फिर हम अपना असली चेहरा नहीं देख पाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय (२/६२-६३) में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि—

**ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।**
**सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥**
**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥**

अर्थात विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यंत मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

जिस तरह पानी को जब गरम किया जाता है तो थोड़ी देर में वह तेज गरम होकर उबलने लगता है, ठीक उसी तरह क्रोध में व्यक्ति गरम होकर उबलता है। जिस तरह पानी के उबलने पर पानी भाप में बदलता जाता है, ठीक उसी तरह व्यक्ति की ऊर्जा भी क्रोध के समय सर्वाधिक मात्रा में व्यय होती है। क्रोध के समय व्यक्ति की मन:स्थिति ही इस तरह की हो जाती है कि वह कुछ सोच-समझ नहीं पाता और असंतुलित व्यवहार करने लगता है। उस समय व्यक्ति की स्थिति कुछ क्षणों के लिए एक विक्षिप्त मनोरोगी की तरह हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसकी सही सोचने व समझने की क्षमता प्रभावित हो जाती है और वह विवेकपूर्ण निर्णय ले पाने की स्थिति में नहीं होता। व्यक्ति की यह मनोस्थिति ही उसके पतित होने में अहम भूमिका निभाती है; क्योंकि अधर्म, पाप, अपराध व व्यभिचार आदि के कारणों में क्रोध का ही हाथ होता है।

क्रोध करने पर, हित अनहित में, शुभ अशुभ में, शांति अशांति में, हिंसा अहिंसा में, परमार्थ स्वार्थ में, विनम्रता अहंकार में, शक्ति विध्वंस में और भाईचारा टकराव में बदल जाता है। क्रोध एक ऐसा विष है, जो मनुष्य के चिंतन और व्यक्तित्व को विषाक्तता में बदल देता है। क्रोध एक ऐसे विकार के रूप में है, जो कई तरह की बीमारियों

को जन्म देता है। चिकित्सकों के अनुसार, कैंसर, उच्च रक्तचाप, सिरदरद और मानसिक रोगों की एक मुख्य वजह क्रोध ही है। मनुष्य के जितने भी मनोविकार हैं, उनमें क्रोध प्रमुख है, जिससे हर हालत में बचने की सलाह दी जाती है। यह एक ऐसा मनोविकार है, जो बुद्धि, विवेक और भावना, सबको नष्ट कर देता है।

क्रोध का पहला प्रहार विवेक पर व दूसरा प्रहार होश पर होता है। इसलिए कठिन कार्यों, संकट के समय और अपमान होने पर धैर्य धारण करने की सलाह दी जाती है। क्रोध व्यक्ति को मानसिक रूप से पूरी तरह विकलांग बना देता है। इसके अलावा शारीरिक व मानसिक ऊर्जा का जितना क्षय, काम व क्रोध से होता है, उतना किसी दूसरी वजह से नहीं होता। यह बात वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा भी सही सिद्ध हुई है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्रोध क्यों आता है? सामान्यतया क्रोध की मुख्य वजह मनोवांछित इच्छा की पूर्ति न हो पाना है। इसके अतिरिक्त सम्मान को ठेस पहुँचने, अहंकार को चोट लगने से भी मनुष्य अपना संतुलन खो बैठता है और क्रोध करने लगता है। यदि क्रोध पर नियंत्रण पाना है तो हमें अपनी समझ को इतना परिपक्व कर लेना चाहिए कि वह क्रोध के आवेश में न आ सके और ऐसा मात्र आत्मनियंत्रण द्वारा ही संभव है।

आत्मनियंत्रण साधना का वह आयाम है, जिसमें हम अपने षड्रिपुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा आदि पर विजय प्राप्त करने की साधना करते हैं और जितेंद्रिय बनते हैं। जो व्यक्ति अहंकारी होता है, वह अधिक क्रोध करता है और भय भी उसके अंदर किसी न किसी रूप में मौजूद होता है, लेकिन वह ऐसे प्रदर्शित करता है, जैसे उसे कोई भय नहीं है। दरअसल व्यक्ति स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ साबित करना चाहता है और स्वयं को बड़ा समझदार, होनहार मानता है; जबकि उसका व्यवहार ऐसा होता है, जो उसकी नासमझी को दरसाता है। श्रेष्ठ व्यक्ति वही है, जिसने अपने षड्रिपुओं पर विजय पा ली है और सर्वप्रथम अपने क्रोध पर नियंत्रण कर लिया है। ऐसा होने पर ही दुर्भावनाएँ मन को घेर नहीं पाएँगी और व्यक्ति पूर्णरूप से स्वस्थ रह पाएगा।

**महात्मा तिरुवल्लुवर कपड़े बुनकर अपनी आजीविका चलाते थे। एक दिन संध्या समय उनके पास एक उद्दंड युवक आया और एक कपड़े का दाम पूछने लगा। संत ने बताया—''बीस रुपये।'' युवक ने उस कपड़े के दो टुकड़े कर दिए और फिर उनका मूल्य पूछा। संत ने कहा—''दस-दस रुपये।'' इस पर युवक ने उन टुकड़ों के भी टुकड़े कर दिए और बोला—''अब।'' संत ने उसी गंभीरता से कहा—''पाँच रुपये।'' इस पर वह युवक उन टुकड़ों के टुकड़े करता गया और संत धैर्यपूर्वक उनका मूल्य बताते रहे।**

**युवक संभवतः उन्हें क्रोधित करने के लिए संकल्पित-सा दीख रहा था। अंत में युवक ने तार-तार किए हुए उस कपड़े को गेंद की तरह लपेटा और कहा—''अब।'' तिरुवल्लुवर ने कहा—''बेटा! इस कपड़े में अब रह ही क्या गया है, जिसका मूल्य लगाया जाए। इसे तुम निःशुल्क ले जा सकते हो।'' अब भी उनका इतना धीर-गंभीर उत्तर सुनकर युवक का हृदय पश्चात्ताप से भर गया और उनके सम्मुख नतमस्तक हो गया। वस्तुतः व्यक्ति दंड द्वारा उतना नहीं सीखता, जितना क्षमा और प्रेम द्वारा सीखता है।**

# श्रीरुद्राष्टाध्यायी के दार्शनिक एवं मांत्रिक रहस्य

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग के शोधार्थी कमलेश कांडपाल द्वारा सन् २०१० में यजुर्वेद के रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों के संदर्भ में एक शोधकार्य पूरा किया गया। यह एक सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक अध्ययन है। इस शोध-अध्ययन का विषय था—'**श्रीरुद्राष्टाध्यायी के दार्शनिक एवं मांत्रिक रहस्य—एक विवेचनात्मक अध्ययन**।' यह शोधकार्य विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के संरक्षण एवं प्रो० जितेंद्र तिवारी के निर्देशन में पूर्ण किया गया। इस शोध-अध्ययन में कुल छह अध्याय हैं—

**प्रथम अध्याय है—विषय प्रवेश** । इसमें रुद्राष्टाध्यायी का महत्त्व, मंत्रों का संकलन, विभिन्न भाष्यकारों के मत तथा रुद्राष्टाध्यायी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं परंपरा वैशिष्ट्य का वर्णन किया गया है। अपने मूलरूप में श्रीरुद्राष्टाध्यायी यजुर्वेद का सोलहवाँ अध्याय है। यजुर्वेद का वैदिक संहिताओं में अति विशिष्ट स्थान है। इसमें लौकिक दृष्टि से अग्निहोत्र आदि कर्मकांड एवं तात्त्विक दृष्टि से अनेक आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी यजुर्वेद का वह विशिष्ट भाग है, जिसमें समस्त वैदिक कर्मकांड एवं सिद्धांतों का सारभूत मौजूद है। वैसे तो रुद्राध्याय एवं रुद्र मंत्र सभी वेद संहिताओं में उपलब्ध होते हैं, परंतु विद्वानों की दृष्टि में शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी को ही अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यह महत्त्व इसलिए है; क्योंकि इसमें रुद्र संबंधी सभी मंत्रों का समावेश है। रुद्र की अष्टमूर्तियों के अनुरूप इन मंत्रों का संकलन एवं संपादन आठ अध्यायों में हुआ है, जिसे रुद्राष्टाध्यायी कहा जाता है। रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों में यजुर्वेद संहिता के ही अलग-अलग अध्यायों के मंत्रों को संकलित किया गया है।

वैदिक सिद्धांतों में सृष्टि का मूल तत्त्व एक ही माना गया है। अद्वैत रूप से विद्यमान इसी एक तत्त्व को रुद्राष्टाध्यायी में रुद्रदेव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रुद्र और शिव में अभेद का संबंध है। ऐतिहासिक एवं परंपराओं की दृष्टि से शिव एवं रुद्र रूप में आदिकाल से लेकर आज तक इनकी उपासना एवं अभ्यर्थना होती रही है। समूचे आर्ष वाङ्मय में रुद्र एक प्रधान देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। रुद्र का शांत एवं सौम्य कल्याणकारी रूप ही शिव रूप है। रुद्राष्टाध्यायी में इन दोनों रूपों की स्तुति के मंत्र मौजूद हैं। महायोगी श्रीअरविंद की दृष्टि में भी शिव तत्त्व में समस्त सृष्टि एवं ब्रह्मांड के आधार और विकास का रहस्य समाया हुआ है। इस अध्याय में रुद्राष्टाध्यायी के लौकिक महत्त्व और तात्त्विक स्वरूप, दोनों की विस्तृत विवेचना मौजूद है।

**द्वितीय अध्याय है—वेदों में रुद्र रहस्य**। वेद चार माने गए हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद। परंतु वैदिक साहित्य का अत्यंत विस्तार है, यथा—संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और वेदांग। इस अध्याय में रुद्र रहस्य को प्रस्तुत करने के लिए वेद के साथ वैदिक साहित्य के इन सभी स्तोत्रों का भी अनुशीलन किया गया है।

वेदों में रुद्र देव की सर्वप्रथम अवधारणा प्राकृतिक शक्तियों के स्वामी देवता के रूप में हुई है। प्रकृति के शांत मनोरम एवं उग्र भयंकर इन दोनों रूपों के आधार पर वैदिक काल में आर्यों ने रुद्रदेव की कल्पना कर उनका पूजन किया है। ऋग्वेद में रुद्र के इन दोनों रूपों का उल्लेख है। परवर्ती वैदिक साहित्य में रुद्र का स्थान प्रधान देवता और परमतत्त्व के रूप में उल्लेख हुआ है। यजुर्वेद के रुद्र मंत्रों में तीनों लोकों में, ब्रह्मांड एवं पिंड सभी जगह रुद्र की उपस्थिति कही गई है। यजुर्वेद के रुद्राध्याय (शतरुद्रीय) में रुद्र के विराट स्वरूप का प्रतीकात्मक रूप में उल्लेख है, जिसमें परमब्रह्म की प्रार्थनाएँ रुद्रशक्ति के नाम से हुई हैं। रुद्र के इसी परमब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को उपनिषदों में स्पष्ट रूप से परमतत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

वेदों में रुद्रदेव का अनेक नामों से उल्लेख मिलता है। कार्य एवं क्रियाशक्ति के स्वरूप के आधार पर एक ही शक्ति को विभिन्न विशेषणों और नामों से संबोधित

किया गया है। वेदों में रुद्र के अष्टनाम—भव, शर्व, पशुपति, उग्र, अशमि, रुद्र, महादेव व ईशान का वर्णन है। इसके अतिरिक्त त्र्यंबक, पशुपति, व्यात्य रुद्र, नीललोहित, नीलग्रीव, कृत्तिवासा, दरिद्र, गिरिश, गिरिशंत, कपर्दी, भिषक् और ओंकार रुद्रदेवता आदि नामों से भी रुद्रदेव के विभिन्न रूपों का वेदों में उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में एकादश रुद्र की चर्चा हुई है। तात्त्विक रूप में दस प्राण एक आत्मा को मिलाकर एकादश रुद्र कहा गया है। वेदों की शैली प्रतीकात्मक रही है, जिससे उनमें उपलब्ध मंत्र व कथानकों में अनेक गूढ़ रहस्य समाहित हैं। पुराण साहित्य का विस्तार वेदों के इन्हीं गूढ़ प्रतीकों और तथ्यों का सरलीकरण है।

**तृतीय अध्याय है—पुराणों में रुद्र रहस्य**। इस अध्याय के अंतर्गत पुराणों में रुद्र का स्वरूप, रुद्र की लीलाकथा, रुद्रोपासना की विधि एवं रुद्र के उपासक भक्तों का विवेचन प्रस्तुत हुआ है। पुराणों में रुद्र रहस्य के दो पहलू हैं। प्रथम—इनकी शैली कथानक और दृष्टांतों से युक्त है तथा द्वितीय—इनमें वेदों की रुद्रशक्ति के शिवस्वरूप को प्रधानता दी गई है।

पुराणों में शिव का स्वरूप परमतत्त्व ब्रह्म सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। शिव पुराण की शतरुद्र संहिता में शिव के आठ कल्याणकारी स्वरूपों का वर्णन करते हुए शिव तत्त्व को विश्व का परम कल्याणकारी और सर्वदा सर्वभाव उपासना करने योग्य कहा है। लिंग पुराण में पंचब्रह्म स्वरूप शंभु का निरूपण किया गया है, जो समस्त तत्त्वों में विद्यमान है। कूर्म पुराण में शिव का स्थाणु रूप में नामकरण करते हुए शिव के लिंग स्वरूप की उत्पत्ति का वर्णन है। महाभारत में शिव के नीलकंठ रूप की चर्चा है। वायु पुराण में शिव के विभिन्न नाम रूपों की चर्चा के साथ-साथ शिव की पत्नी, पुत्रों व गणों अर्थात शिव परिवार की भी विस्तार से चर्चा हुई है।

रुद्र की लीलाकथा में रुद्र के विभिन्न अवतारों का उल्लेख हुआ है। शिव पुराण के एक उपाख्यान में रुद्र के ग्यारह अवतारों की कथा का वर्णन है। साथ ही शिव के ब्रह्मचारी के रूप में, दुर्वासा के रूप में, अश्वत्थामा के रूप में एवं हनुमानावतार के रूप में अवतारों की विवेचना की गई है। पुराणों में रुद्रोपासना की विधि को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। शिव पुराण, गरुड़ पुराण, लिंग पुराण में शिवार्चन के विविध मंत्र, स्तुतियाँ एवं शिवलिंग की पूजा विधि व माहात्म्य का विस्तृत उल्लेख है। शिव पुराण एवं मत्स्य पुराण में प्रस्तुत भगवान रुद्र को संतुष्ट करने वाले विभिन्न व्रत, उपवासों और रुद्र संबंधी मंत्र जप-पाठ का वर्णन है। दैनिक उपासना से लेकर महाशिवरात्रि जैसे विशेष पर्वों एवं तिथियों में संपन्न की जाने वाली रुद्रोपासना का पुराणों में विस्तृत उल्लेख हुआ है। इसके साथ ही राजा श्वेत एवं बालक उपमन्यु जैसे श्रेष्ठ शिवभक्तों के जीवन-चरित्र का वर्णन भी पुराणों में प्राप्त होता है।

**चतुर्थ अध्याय है—श्रीरुद्राष्टाध्यायी के दार्शनिक रहस्य**। इसमें रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों में ईश्वर, आत्मा, जीव, प्रकृति, कर्म-बंधन-मोक्ष जैसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक संप्रत्ययों का अनुशीलन एवं विवेचन प्रस्तुत हुआ है। साथ ही हठयोग, प्राणयोग, कुंडलिनी योग जैसे यौगिक संप्रत्ययों एवं ज्योतिष विज्ञान के मौलिक सूत्रों को भी रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों में खोजा गया है।

रुद्राष्टाध्यायी के रुद्र देवता को एकमात्र परमतत्त्व के रूप में देखा गया है। वही सत्ता शिव रूप है और वही रुद्र रूप है। रुद्र ही आदित्य, इंद्र, अग्नि, वायु आदि देवशक्तियों के रूप में तथा मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग की शरीरस्थ जीवात्मा के रूप में हैं और पंचभौतिक इस संसार की दृश्य एवं अदृश्य सत्ताओं एवं इनमें व्यापक विश्वात्मा के रूप में मौजूद हैं। रुद्राष्टाध्यायी के पंचम अध्याय में रुद्र देव को उनकी समस्त विशेषताओं और शक्तियों के साथ नमस्कार किया गया है। इस अध्याय में रुद्र देव के एकत्व एवं बहुत्व की नानाविधि शक्तियों का निरूपण है और इन शक्तियों को शांत करने, इनसे बचने तथा कल्याण करने की प्रार्थना भी इनमें की गई है, जिसका तात्त्विक और पौराणिक महत्त्व है।

शतपथ ब्राह्मण में देव कहते हैं—'यह रुद्र बड़ा भयंकर है। चलो, इसे अन्न प्रदान करें, इससे यह शांत हो जाएगा। इस प्रकार देवों ने रुद्र को अन्न देकर शांत किया। रुद्र के शमन करने की इस प्रक्रिया को 'शांत देवत्व' कहते हैं। यही शांत देवत्व परोक्ष में शतरुद्रिय कहलाता है।' रुद्र देवता पर विचार करते हुए यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रुद्र देव की सीमा में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर आदि सभी प्राणियों का समावेश हो जाता है। चेतन प्राणियों के अतिरिक्त भौतिक जड़ पदार्थों का भी परिगणन रुद्र देव में ही किया गया है। इसीलिए रुद्राध्याय के किन्हीं मंत्रों के एक ओर 'नमः' शब्द का प्रयोग है और कई मंत्र ऐसे भी हैं,

जिनके आगे-पीछे दोनों ओर 'नमः' शब्द का प्रयोग है। जिनके दोनों ओर नमस्कार है, वे घोरतर, अशांततर रुद्र हैं, उन्हें आते हुए नमस्कार किया जाता है व जाते हुए भी नमस्कार किया जाता है।

रुद्राष्टाध्यायी की मंत्र स्तुतियों में महानारायण के रूप में रुद्रशक्ति का ईश्वर रूप प्रकट हुआ है। ईश्वर को सगुण ब्रह्म भी कहा जाता है। इस रूप में रुद्र देव सृष्टिकर्त्ता, नियामक और संहारकर्त्ता हैं और वहीं अंतर्यामी रूप में स्थित कर्मफलदाता एवं मुक्तिदायक हैं।

वे ही एक साथ विश्व, विश्वात्मा और परमात्मा हैं। वे ही ब्रह्म महेश्वर नाम से अखिल ब्रह्मांड में और पिंड में संव्याप्त हैं और इनसे परे निराकार रूप में भी विद्यमान हैं। रुद्राष्टाध्यायी में रुद्र देव की सत्ता तीनों लोकों में कही गई है, यथा पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। ये तीन लोक पिंड में भी हैं—नाभि से जानु तक पृथ्वी लोक, मुख से नाभि तक अंतरिक्ष लोक और सिर के ऊपर से मुख तक द्युलोक। इस तरह पिंड और ब्रह्मांड में रुद्रशक्ति की सत्ता को विद्यमान मानकर रुद्राष्टाध्यायी में रुद्र के कोप शमन हेतु यज्ञीय विधान का उल्लेख है।

रुद्राष्टाध्यायी में रुद्र के ईश्वर व जीव रूप में स्थित होने के साथ ही सृष्टि रूप में भी विस्तार से वर्णन है। सृष्टि क्रम के साथ ही जीव के कर्म-बंधन और मोक्ष संबंधी विचारों का भी रुद्राष्टाध्यायी में प्रतीकात्मक एवं आलंकारिक रूप में उल्लेख हुआ है। इस तरह भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों के सभी चिंतन सूत्र रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों में विद्यमान हैं।

**पंचम अध्याय है—श्री रुद्राष्टाध्यायी के मांत्रिक रहस्य।** इस अध्याय के अंतर्गत मंत्र का अर्थ, मंत्रों का वर्गीकरण, मंत्र विज्ञान पर प्रकाश डालते हुए श्री रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रानुष्ठान संबंधी विधान की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत हुई है।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी के मांत्रिक रहस्य स्वयं में अगणित अक्षय शक्तियों का भंडार हैं और इसके रहस्य को जानना सर्वसाधारण के परे की चीज है। मंत्र क्या है? इस बारे में जानना जरूरी है। प्रत्येक मंत्र की अपनी एक विशेषता है। इसी आधार पर श्रीरुद्राष्टाध्यायी के मंत्र भी एक अलग विशेषता रखते हैं।

मंत्र शब्द की उत्पत्ति 'मन्' धातु में 'षट्रन्' प्रत्यय लगाकर होती है। इस प्रकार **'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मंत्रः'** अर्थात जिसके द्वारा आत्म का आदेश निजानुभव माना जाए, वह मंत्र है। मन और त्र (त्राण या बंधन से मुक्ति) का समन्वित रूप ही मंत्र कहलाता है। आचार्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य कहते हैं कि मंत्रों का गठन शब्द विद्या के गूढ़ रहस्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। उनके शब्दोच्चार से मुख अवयव ही गति नहीं करते, वरन उनकी हलचल सूक्ष्मशरीर के रहस्यमय केंद्रों को भी प्रभावित करती है।

मंत्रों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है—गुणानुसार तीन प्रकार के मंत्र होते हैं—(१) परमार्थ मूलक मंत्र, (२) कामना मूलक मंत्र, (३) अभिचार मूलक मंत्र। शास्त्रीय पद्धति के अनुसार भी तीन प्रकार के मंत्र होते हैं—(१) वैदिक और पौराणिक मंत्र, (२) तांत्रिक मंत्र, (३) लौकिक मंत्र। लिंगभेदानुसार मंत्र भी तीन भागों में विभाजित हैं—(१) पुरुष मंत्र, (२) स्त्री मंत्र, (३) नपुंसक मंत्र। अक्षरसंख्यानुसार भी मंत्रों के प्रकार हैं—एक अक्षर वाले मंत्र को पिंड मंत्र कहते हैं, दो अक्षर वाले मंत्र को कर्तरी, तीन से नौ अक्षर तक के मंत्र को बीज मंत्र और दस से बीस वर्ण तक के मंत्र को पर्यंत मंत्र कहते हैं। इससे ऊपर वाले मंत्र को माला मंत्र कहते हैं, जैसे—गायत्री मंत्र व महामृत्युंजय मंत्र आदि। मंत्रों का यह वर्गीकरण तो साधना की परंपराओं और प्रचलन के आधार पर है, परंतु तात्त्विक रूप से प्रत्येक मंत्र में पाँच तत्त्व होते हैं—ऋषि, छंद, देवता, बीज और तत्त्व। इन्हीं पंचतत्त्वों में मंत्रों का रहस्य समाहित रहता है।

मंत्र का प्रत्यक्ष स्वरूप ध्वनि होता है। जब किसी शब्द मंत्र को एक रस, एक स्वर, एक लय के साथ बार-बार दोहराया जाता है तो उससे उत्पन्न हुई ध्वनि तरंगें सीधी या साधारण नहीं रह जातीं। वृत्ताकार उनका दोहराया जाना अंतरंग पिंड में तथा बहिरंग ब्रह्मांड में एक असाधारण शक्ति-प्रवाह उत्पन्न करता है। शुक्ल यजुर्वेदीय श्रीरुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों में भी यही विज्ञान है। इन मंत्रों में वह सामर्थ्य विद्यमान है, जो स्वयं को, दूसरों को और समस्त सूक्ष्मजगत को प्रभावित करती है।

शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी दस अध्यायों में विभाजित है। प्रथम आठ अध्यायों में भगवान रुद्र—शिव की विशेष महिमा का वर्णन किया गया है, जिसके कारण ये अध्याय रुद्राष्टाध्यायी के नाम से प्रसिद्ध हैं। नवम अध्याय को शांत्याध्याय के नाम से जाना जाता है। रुद्राष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय का पहला मंत्र बहुत

प्रसिद्ध है, जिसका विनियोग गणेश जी के ध्यान-पूजन में किया जाता है '**गणानां त्वा गणपति....**'। इस मंत्र में अनुष्टप् छंद द्वारा संसार का कष्टनिवारण करने के लिए श्रीगणेश जी को शांत करने की प्रार्थना की गई है। इसके दूसरे और तीसरे मंत्र में गायत्री छंद, त्रिष्टप् छंद आदि वैदिक छंदों का उल्लेख मिलता है। पाँचवें मंत्र से दसवें मंत्र तक के मंत्र समूह को '**शिवसंकल्पसूक्त**' कहा जाता है। इसमें ऐसी प्रार्थना की गई है कि साधक का मन शुभ संकल्प वाला हो। प्रथम अध्याय में कुल १० मंत्र हैं।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी के द्वितीय अध्याय के मंत्रों के ऋषि नारायण हैं तथा इसके देवता विराट पुरुष हैं। इस अध्याय में कुल २२ मंत्र हैं। यह अध्याय भगवान विष्णु का माना जाता है। इसमें प्रसिद्ध '**पुरुष सूक्त**', उत्तरनारायण सूक्त तथा श्रीलक्ष्मी देवी की पूजा-साधना में प्रयुक्त होने वाले मंत्र भी हैं।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी का तीसरा अध्याय '**अप्रतिरथसूक्त**' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अध्याय के देवता 'देवराज इंद्र' हैं तथा मंत्रों के ऋषि अप्रतिरथ हैं। अप्रतिरथ द्वारा दृष्ट ये मंत्र देवराज इंद्र के पराक्रम को सूचित करते हैं। इन्होंने अपने नाम के अनुसार अर्थात जिसके रथ का प्रतिरोध न हो, इसी आशय को अपने इन मंत्रों में अभिव्यक्त किया है। इस अध्याय में कुल १७ मंत्र हैं।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय में भी १७ मंत्र हैं। यह अध्याय '**मैत्रसूक्त**' के रूप में प्रसिद्ध है, जिसमें भगवान मित्र—सूर्य की स्तुति की गई है। श्रीरुद्राष्टाध्यायी का पाँचवाँ अध्याय (**नमकाध्याय**) सबसे प्रधान माना गया है। इस अध्याय में ६६ मंत्र हैं। इन मंत्रों में भगवान रुद्र के सौ रूपों का वर्णन है। श्रीरुद्राष्टाध्यायी के षष्ठ अध्याय में कुल आठ मंत्र हैं। इस अध्याय को '**महच्छिर**' के रूप में जाना जाता है। इसमें पहला मंत्र सोम देवता के लिए समर्पित है। सोम उसे कहते हैं, जो पोषण प्रदान करने वाले होते हैं। इसी अध्याय में विश्वविख्यात परमकल्याणकारी '**महामृत्युंजय मंत्र**' का वर्णन मिलता है।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी के सप्तम अध्याय को '**जटा**' कहा जाता है। इसमें कुल सात मंत्र हैं। इस अध्याय के पहले मंत्र में 'मरुत्' देवता का वर्णन मिलता है। इसके ऋषि प्रजापति तथा भुरिक् गायत्री छंद हैं। श्रीरुद्राष्टाध्यायी के अष्टम अध्याय को '**चमकाध्याय**' कहा जाता है। इसमें कुल २९ मंत्र हैं। इस अध्याय के ऋषि देव, देवता अग्नि तथा छंद शक्वरी हैं। श्रीरुद्राष्टाध्यायी के नवें '**शांत्याध्याय**' में कुल २४ मंत्र हैं। इसमें वाणी रूप ऋग्वेद, मन रूप यजुर्वेद तथा प्राण रूप सामवेद की शरण में जाने के लिए प्रार्थना की गई है। '**स्वस्ति प्रार्थना मंत्र**' श्री रुद्राष्टाध्यायी का सबसे अंतिम अध्याय है। इसमें कुल १२ मंत्र हैं। इन मंत्रों में देवों का सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है।

श्रीरुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों का लौकिक एवं पारमार्थिक कामनाओं की पूर्ति हेतु भिन्न-भिन्न विधियों में पाठ-अनुष्ठान एवं होम का विधान बताया गया है। इसमें महामृत्युंजय जैसे कई ऐसे मंत्र हैं, जो साधक की सर्वमनोकामना को पूर्ण करने में समर्थ कहे गए हैं। मनुष्य जीवन के त्रितापों का शमन और सुख-संपत्ति से लेकर मोक्ष तक की कामना को पूर्ण करने वाला मंत्र विज्ञान रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों में समाहित है।

आदिकाल से साधक एवं सिद्धों ने इन मंत्रों के अनुष्ठान एवं प्रयोगों द्वारा अपने लक्ष्य को सिद्ध किया है। साधना जगत में आज भी रुद्राष्टाध्यायी का उतना ही महत्त्व है, जितना पहले था। भगवान शिव की कृपा प्राप्ति हेतु श्रीरुद्राष्टाध्यायी के अनुष्ठान का तीन रूपों में उल्लेख है—(१) पाठात्मक, (२) हवनात्मक एवं (३) अभिषेकात्मक। शोध-अध्ययन में इन सभी का विस्तार से विवेचन हुआ है।

**षष्ठ अध्याय है—उपसंहार**। इस अध्याय में उपर्युक्त सभी अध्यायों के सार-संक्षेप को प्रस्तुत करते हुए इस अध्ययन के महत्त्व एवं विशेषताओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। रुद्राष्टाध्यायी में समग्र वैदिक दर्शन का, जीवन और सृष्टि के मूलभूत सिद्धांतों का तथा लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन की संपूर्ण विभूतियों का रहस्य समाया हुआ है।

इस अध्याय में श्रीरुद्राष्टाध्यायी के लौकिक और तात्त्विक, दोनों पहलुओं को स्पष्ट करते हुए इसके सामयिक महत्त्व को प्रकट किया गया है। आज मनुष्य अपने जीवन में आने वाली विसंगतियों के समाधान हेतु योग, तंत्र, मंत्र, ज्योतिष, यज्ञ, कर्मकांड आदि सभी उपासना धाराओं का अवलंबन ले रहा है। ऐसे में श्रीरुद्राष्टाध्यायी के रूप में वैदिक ज्ञानसंपदा का अनुप्रयोग अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। ❀

अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान—३

# ध्रुवतारे पर संयम से होता है नक्षत्रों का ज्ञान

अंतर्यात्रा विज्ञान का प्रत्येक सूत्र नए अनुसंधान का नया निष्कर्ष है। हाँ, यह सच है कि इसका हर सूत्र जीवन-व्यवस्था का नूतन आयाम खोलता है। वर्तमान में जो जीवन हम जी रहे हैं, वह आधा-अधूरा व अपूर्ण है। यही वजह है कि सभी में अपने अधूरेपन को पूरा करने की कशिश व कोशिश दिखाई देती है। हरेक को अनुभूति होती रहती है अपनी अपूर्णता की, परंतु इसके सही स्वरूप व प्रयास की सही दिशा से प्राय: सब के सब अपरिचित हैं। इसी कारण इस अधूरेपन को दूर करने के प्रयास जितने तीव्र होते हैं, अपूर्णता की तृषा उतनी ही बढ़ जाती है। ऐसा होता है, केवल सही दिशा व सही विधि का बोध न होने के कारण। इस संबंध में जो प्रयास किए जाते हैं उनकी यात्रा बाह्य होती है। इसके लिए प्रयोग में लाया जाने वाला विज्ञान भी बाहरी होता है। कहने का अर्थ यह है कि संपूर्ण प्रयास बाह्ययात्रा विज्ञान की दिशा व दायरे में किए जाते हैं, जबकि जरूरत इस उलटे को उलटकर सीधा करने की है। बाह्ययात्रा विज्ञान को अंतर्यात्रा विज्ञान में परिवर्तित किया जाना है। भौतिक विज्ञान को अध्यात्म विज्ञान में रूपांतरित होना है।

इस योगकथा की कड़ियों में इसी सत्य के विविध रूप प्रकट किए जाते रहे हैं। इसमें बताई गई विधियों ने हमें सतत व निरंतर बोध की ओर अग्रसर किया है। विधियाँ भले ही अनेक रही हों, परंतु उनकी दिशा हमेशा एक रही है। पिछली कड़ी में भी एक विधि को स्पष्ट किया गया था, जिससे कि हमारी अंतर्यात्रा सुगम व सरल हो सके। इसमें बताया गया था कि चंद्रमा पर संयम करने से तारों-नक्षत्रों की समग्र व्यवस्था का ज्ञान हो जाता है। मन का प्रतीक है चंद्रमा। मन चंचल हो तो इसे अस्थिरता, चिंता व अवसाद-विषाद घेरे रहते हैं। पुराणों की भाषा में कहें तो चंद्रमा की स्थिति पर राहु की विषैली छाया का ग्रहण है। इसके विपरीत यदि मन स्थिर हो तो जीवन में स्थिरता, शांति, प्रसन्नता का अमृत प्रसाद मिलता है। चंद्रमा की ऐसी स्थिति को ही पुराणों में सोम या अमृत कहा गया है। कथा प्रतीक जो भी हो, पर सारा जोर रूपांतरण पर है। मन के रूपांतरण से ही योग की साधना सिद्ध होती है।

इसके बाद महर्षि पतंजलि संयम के अगले क्रम को स्पष्ट करते हैं। उनके अगले सूत्र में इसी सत्य को दरसाया गया है—

**ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्॥ ३/२८॥**

**शब्दार्थ**= **ध्रुवे**= ध्रुवतारा में (संयम करने से); **तद्गतिज्ञानम्**= उन तारों की गति का ज्ञान हो जाता है।

**भावार्थ**= ध्रुव नक्षत्र पर संयम करने से तारों-नक्षत्रों की गतिमयता का ज्ञान प्राप्त होता है।

स्थिरता का प्रतीक है ध्रुवतारा। पुराण कथाएँ भी इसे इसी रूप में निरूपित करती हैं। पुराणों में भक्त ध्रुव की कथा मिलती है। महाराज उत्तानपाद एवं उनकी रानी सुमति के पुत्र जिन्हें अपनी विमाता सुरुचि के कोप का शिकार होकर पिता के प्रेम व उनकी गोद से वंचित होना पड़ा। पीड़ित ध्रुव ने अपनी व्यथा माता से कही। उनकी भक्तिमती माता ने उन्हें भक्ति का उपदेश देते हुए कहा—"पुत्र! इस संसार में मिलने वाले सभी तरह के प्रेम व पद अस्थिर हैं। शाश्वत व स्थिर है तो केवल भगवत्प्रेम व भगवत्कृपा का पद।" इस अनिश्वर पद को पाने के लिए बालक ध्रुव वन की ओर चल पड़े। वहाँ उन्हें देवर्षि नारद का मार्गदर्शन मिला। इस मार्गदर्शन के अनुरूप उन्होंने कठिन तप किया। उनके तप व भक्ति के प्रभाव से भगवान श्रीहरि प्रसन्न हुए। वरदान में उन्होंने ध्रुव को लौकिक जीवन में स्थिर राज्य व मृत्यु के उपरांत स्थिर नक्षत्र लोक प्रदान किया। यह नक्षत्र लोक उन्हीं के नाम से ध्रुव नक्षत्र कहलाया। उनके स्थिर संकल्प की ही भाँति उनका नक्षत्र लोक भी स्थिरता का प्रतीक बन गया।

बड़ा प्रतीकात्मक सत्य है, हमारे अपने अंतर्जीवन का यह। हमारे अपने भीतर कुछ ऐसा खोज लेना है, जो गतिविहीन हो, जो पूर्णतया स्थिर हो। वही हमारा सच्चा स्वभाव है, हमारा वास्तविक अस्तित्व व सच्चा स्वरूप

है—ध्रुवतारे जैसा पूर्णरूपेण गतिविहीन। जहाँ गति नहीं होती, वहीं शाश्वतता होती है। जब गति होती है, तो समय भी होता है। सारी गतिशीलताओं का प्रारंभ भी और अंत भी, उनका जन्म भी है और मृत्यु भी, लेकिन यदि किसी तरह की गति नहीं हो, तो न प्रारंभ है और न अंत; न जन्म है न मरण। हमारे भीतर का यह ध्रुवतारा स्वयं का साक्षी भाव है। इसी साक्षी भाव पर संयम करना है।

संयम के क्रम में उच्च स्थिति है यह। इस तक पहुँचने के लिए पहले अपना संयम सूर्य-ऊर्जा पर ले जाना होता है; क्योंकि प्राय: व्यक्ति जैविक ऊर्जा पर जीता है। वहीं पर वह स्वयं को खोज सकता है। इस पर संयम करके सूर्य-ऊर्जा को चंद्र-ऊर्जा में रूपांतरित करना है। शीतल, एकाग्रचित्त व शांत होते जाना है। सभी तरह की उत्तेजनाओं, उत्ताप को विदा करना है। ऐसा होने पर ही अंतर आकाश को देखा जा सकता है। इस स्थिति में पहुँचने पर यह जानने की आवश्यकता होती है कि कौन है देखने वाला, द्रष्टा। इस ज्ञान से पता चलता है कि जो इन सबको देखता है, वही है ध्रुवतारा। सर्वथा स्थिर, द्रष्टा व साक्षी।

यह ठीक है कि जीवन गतिशील है। व्यवहार, भाव, विचार सभी में गतिमयता है। न तो एक कार्य सदा किया जाना संभव है, विचारों में भी स्थायित्व नहीं है। भावदशाएँ भी हमेशा एक जैसी नहीं रहतीं। भावदशाओं में गतिशीलता कुछ ज्यादा ही है। इसीलिए तो इन्हें अँगरेजी में इमोशन्स कहा गया है। इमोशन्स आया है मोशन से, यानी गति से। वे गतिशील रहती हैं, मोशन में रहती हैं, इसलिए तो इन्हें इमोशन्स कहा जाता है। भावों में बदलाव सतत है। कभी उदासी तो कभी प्रसन्नता, कभी क्रोध तो कभी करुणा, कभी प्रेम तो कभी घृणा, लेकिन यह हमारा स्वभाव नहीं है। इन परिवर्तनों के पीछे कोई तो ऐसा अवश्य है, जो इन्हें थामे रहता है। जैसे कि किसी माला में पिरोए गए फूल तो दिखाई देते हैं, पर धागा नहीं दिखाई देता। हालाँकि यही धागा सारे फूलों को एक साथ जोड़े रखता है। हमारे जीवन की सभी गतियाँ फूलों की भाँति हैं। इन्हें थामने वाला धागा है, हमारा साक्षी भाव, यही ध्रुवतारा है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि संयम यदि ध्रुवतारे पर किया जाए तो तारों, नक्षत्रों की गतिमयता का ज्ञान होता है। ध्यान रहे महर्षि का यह सूत्र अपने पिछले सूत्र से जुड़ा है। यह पिछला सूत्र है चंद्र पर संयम करने से तारों, नक्षत्रों की समग्र व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है। तो पहले व्यवस्था का ज्ञान, तत्पश्चात इस व्यवस्था की क्रियाशीलता का या गतिमयता का ज्ञान। गति का अनुभव केवल उसी चीज के परिप्रेक्ष्य में हो सकता है, जो स्थिर हो। अगर कुछ भी स्थिर न हो तो गतिशीलता को जाना नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए पृथ्वी निरंतर घूम रही है, लेकिन हममें से किसी को उसकी गति का कोई एहसास नहीं है; क्योंकि अन्य सब कुछ भी तो उसी के साथ गतिशील है। पृथ्वी की गतिशीलता का तो तब पता चला, जब उसे सूर्य की स्थिरता के परिप्रेक्ष्य में अनुभव किया गया। इसी तरह की सभी गतियाँ भी साक्षी भाव के परिप्रेक्ष्य में ही जानी-समझी जा सकती हैं।

स्वयं के अंतर आकाश में स्थित ध्रुवतारे यानी कि साक्षी भाव पर संयम करने से व्यवहार, भाव, विचार

**आरंभो न्याययुक्तो यः स हि धर्म इति स्मृतः।**
**अर्थात जो आचरण न्याययुक्त है, वही धर्म है।**

की सूक्ष्मताएँ ही नहीं, प्राण-प्रवाह, कर्म-प्रवाह सहित सभी गतियों को जाना जा सकता है। इनकी प्रक्रिया व परिणाम जाने जा सकते हैं। ऐसा होने पर इनमें फेर-बदल भी संभव है। योग की विविध तकनीकों द्वारा इनके तत्त्व को अनुभव किया जा सकता है। जीवन की व्यवस्था का ज्ञान, उसकी गतिशीलता का ज्ञान यदि अनुभव हो सके तो उसमें फेर-बदल करने वाली प्रक्रियाएँ भी खोजी जा सकती हैं। बंधनों के सम्यक ज्ञान से बंधन मुक्त होने का ज्ञान भी संभव है। अज्ञान के कारणों की खोज यदि सम्यक ढंग से की जाती है तो ज्ञान के कारण भी जाने जा सकते हैं। इस दृष्टि से ध्रुवतारे पर संयम का बड़ा महत्त्व है; क्योंकि इस पर संयम करने से जीवन-व्यवस्था के सभी रहस्य स्वत: उद्घाटित हो जाते हैं। इसकी प्रत्येक समस्या अपने आप पता चलती है, साथ ही समाधान के द्वार भी स्वत: ही खुल जाते हैं।

श्रीराम भक्ति की साधना—७

# मारुति ने किया महादेव का आह्वान

हनुमान की बातों का श्रवण कर सभी इनके मनन में मौन हो गए। देर तक सब की निदिध्यासन की स्थिति बनी रही। कोई कुछ न बोला, सभी शांत रहे। तभी उधर से एक हिरण गुजरा, श्वेत शशक ने भी उपस्थिति जताई। ऋक्षपति जांबवंत इन्हें देखकर सबसे पहले मुखर हुए—वत्स हनुमान ने जो कहा, उससे महर्षि सहमत हैं। महर्षि की सहमति में हम सभी की सहमति है। हाँ, यदि कोई अपनी विशेष सम्मति देना चाहता है तो उसका स्वागत है। यह कहकर वह कुछ देर के लिए शांत हो गए, लेकिन कोई कुछ बोला नहीं। हाँ, मयूर के बोलने की केन्का ध्वनि अवश्य कहीं झुरमुट से सुनाई दी। जब सभी चुप रहे, तब ऋक्षराज जांबवंत ने अपने स्वर को पुनः मुखरित करते हुए कहा—"यदि सभी सहमत हैं तो फिर विचारणीय बिंदु यह है कि इस योजना का क्रियान्वयन व शुभारंभ किस तरह से हो।"

इतना कहकर उन्होंने हनुमान की ओर देखा, हनुमान ने अपनी दृष्टि महर्षि मतंग की ओर फेरी। महर्षि ने देवी अंजनी की ओर देखा। अंजनी ने शबरी की ओर दृष्टि घुमाई। इस दृष्टि में असीम श्रद्धा व पूर्ण विश्वास था। जैसे उन्होंने एक पल में कह दिया कि महर्षि ही समाधान के स्रोत हैं। शबरी के इस मौन में भावों की इतनी परिपूर्णता थी कि सबके नेत्र महर्षि की ओर जा टिके। अब तो उन्हीं को कुछ कहना था। इस बारे में सबकी स्वीकृति, एकमति, सहमति व सम्मति को उन्होंने स्वीकारते हुए कहा—"आप सब के भावों को स्वीकारते हुए मेरा विचार है कि इस योजना का प्रारंभ हम भगवान महेश्वर के आशीर्वाद से करें। इसके लिए हमें उनकी प्रार्थना, उनका आह्वान करना चाहिए। मेरी श्रद्धा व आस्था कहती है कि प्रभु हम सबकी समवेत पुकार अवश्य सुनेंगे।

ऋषि मतंग के इस कथन ने सबको पुलकित कर दिया। देवी अंजनी, वानरराज केसरी, ऋक्षपति जांबवंत समेत सभी हर्षित हो उठे। अंजनी तो अपने हर्ष के अतिरेक में बोल उठी—"प्रभु के दर्शनों का सौभाग्य मिलेगा, इससे अधिक और क्या?" वानरराज केसरी सहित सभी के नेत्र प्रसन्नतापूर्वक छलक उठे। हनुमान के हृदय में आंतरिक अनुराग का ज्वार उमड़ आया। इसे देखकर महर्षि ने कहा—"तब हम सबको भूतभावन महेश्वर का आह्वान करना चाहिए।"

यह कहकर महर्षि मतंग ने सस्वर, अश्रुपूरित नेत्रों से गद्‌गद वाणी से महादेव की स्तुति प्रारंभ की। अन्य सब भी उनका साथ दे रहे थे—

**पशूनां पतिं पापनाशं परेशं**
**गजेन्द्रस्य कृतिं वसानं वरेण्यम्।**
**जटाजूट मध्ये स्फुरद्‌गाङ्गवारिं**
**महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्॥ १॥**
**महेशं सुरेशं सुरारार्तिनाशं**
**विभु विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।**
**विरूपाक्षमिन्द्वर्कविहितत्रिनेत्रं**
**सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्॥ २॥**
**गिरीशं गणेशं गजे नीलवर्णं**
**गवेन्द्राधिरूढ़ं गणातीतरूपम्।**
**भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्ग**
**भवानी कलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्॥ ३॥**
**शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले**
**महेशान शूलिनं जटाजूटधारिन्।**
**त्वमेको जगद्‌व्यापको विश्वरूप**
**प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप॥ ४॥**

जो संपूर्ण प्राणियों के रक्षक हैं, पाप का ध्वंस करने वाले हैं, परमेश्वर हैं, गजराज का चर्म पहने हुए हैं तथा श्रेष्ठ हैं और जिनके जटाजूट में श्रीगंगाजी खेल रही हैं, उन एकमात्र कामारि श्री महादेव जी का मैं स्मरण करता हूँ॥ १॥

चंद्र, सूर्य और अग्नि, तीनों जिनके नेत्र हैं, उन विरूपनयन महेश्वर, देवेश्वर, देवदुःखदलन, विभु, विश्वनाथ, विभूतिभूषण, नित्यानंद स्वरूप, पंचमुख भगवान महादेव की मैं स्तुति करता हूँ॥ २॥

जो कैलाशनाथ हैं, गणनाथ हैं, नीलकंठ हैं, बैल पर चढ़े हुए हैं, अगणित रूप वाले हैं, संसार के आदि कारण

हैं, प्रकाश स्वरूप हैं, शरीर में भस्म लगाए हुए हैं और श्री पार्वती जिनकी अर्द्धांगिनी हैं, उन पंचमुख महादेव जी को मैं भजता हूँ॥ ३॥

हे पार्वतीवल्लभ महादेव! हे चंद्रशेखर! हे महेश्वर! हे त्रिशूलिन! हे जटाजूटधारीन्! हे विश्वरूप! एकमात्र आप ही जगत में व्यापक हैं। हे पूर्णरूप प्रभो! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए॥ ४॥

महर्षि मतंग भाव विह्वल हो स्तुति कर रहे थे। उनके साथ अन्य सभी के स्वर भी मिले हुए थे। देवी अंजनी के नयन झर रहे थे, गला रुँधा हुआ था। वानरराज केसरी की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। अंजनी को तो अपने वे दिन याद आ रहे थे, जब वह पुत्र प्राप्ति के लिए महादेव की आराधना कर रही थी। बड़े अद्‌भुत थे वे दिन। तप, भक्ति से अहर्निश भीगी रहती थीं वह। तब एक दिन अवढरदानी आशुतोष भोलेनाथ प्रकट हुए थे—शशांकशेखर, गंगाधर, त्रिपुर का अंत करने वाले सदाशिव। अतुलनीय प्रकाश, अपरिमित शांति, अनंत प्रसन्नता का जैसे पारावार उमड़ आया था उस दिन। उसके बाद भी प्रार्थना व साधना के क्षणों में अनुभूति का एहसास यदा-कदा होता रहता था। आज इन क्षणों में वही एहसास फिर से प्रगाढ़ हो रहा था।

भावों की इन्हीं वीथियों में सभी के मन कुछ इसी तरह से गुजर रहे थे। भाव के इस उत्तल ताल में इसी तरह की विचार वीथियाँ आरोह-अवरोह कर रही थीं। तभी वहाँ पर अचानक सुगंधि, प्रकाश, प्रसन्नता, शांति का जैसे समुद्र-सा उमड़ आया। बरबस सभी के नयन खुल गए। सुखद आश्चर्य सघन हो उठा। स्वयं प्रभु महेश्वर शूलपाणि साकार खड़े थे। उनके मुख पर कोटि-कोटि सूर्य की आभा थी। मस्तक पर चंद्रमा अमृतवर्षण कर रहा था। नेत्रों से कृपा व करुणा, प्रकाश धाराओं के रूप में बह रही थी। समझ में नहीं आ रहा था कि प्रकाश की सघनता कहाँ अधिक थी—नेत्रों में, मुख पर अथवा मस्तक पर प्रकाशित हो रहे चंद्रमा में। हाथों में त्रिशूल, जटाओं पर गंगावारि—कैसे, कहाँ, किस तरह वर्णन करें महाकाल के उस पावन स्वरूप का। सब अवाक् थे। हतप्रभ, चकित व थकित नयनों से बस, उन्हें निहारे जा रहे थे। दृष्टि जहाँ पर टिक जाए, वहाँ से हटती ही नहीं थी। सभी तर्क शांत थे, बुद्धि की सभी प्रक्रियाएँ बोध में विलीन हो रही थीं। आखिर गुरुओं के भी परमगुरु भगवान दक्षिणामूर्ति सदाशिव स्वयं जो वहाँ उपस्थित थे।

जैसे-तैसे अपने भावों को संवरण करते हुए महर्षि मतंग के मुख से नमन के ये स्वर निकले—

**विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरी तुल्यं निजान्तर्गतं**
**पश्यन्नात्मनि मायया बहिरवोद्‌भूतं यथा निद्रया।**
**यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं**
**तस्मै श्री गुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥**

जो अपने हृदय में स्थित दर्पण में नगरी सदृश विश्व को निद्रा द्वारा स्वप्न की भाँति, माया द्वारा बाहर प्रकट हुए की तरह आत्मा में देखते हुए ज्ञान होने पर अथवा निद्रा भंग होने पर अपने अद्वितीय आत्मा का साक्षात् करते हैं, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को यह मेरा नमस्कार है।

महर्षि के इस ज्ञान व भक्तिपूर्ण नमन को स्वीकारते हुए महादेव ने उनके मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा—"मतंग! तुम मुझे अतिशय प्रिय हो। यहाँ उपस्थित सभी मेरी कृपा के पात्र हैं। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। निस्संकोच अपना मंतव्य कहो।"

**मोक्ष अर्थात मुक्ति। कषाय-कल्मषों से मुक्ति, दोष-दुर्गुणों से मुक्ति, भव-बंधनों से मुक्ति। यही भव-बंधन है, जो स्वतंत्र अस्तित्व लेकर जन्मे मनुष्यों को लिप्साओं और कुत्साओं के रूप में अपने बंधनों में बाँधता है। यदि आत्मशोधनपूर्वक इन्हें हटाया जा सके, तो समझना चाहिए कि जीवित रहते हुए ही मोक्ष की प्राप्ति हो गई।**

*— परमपूज्य गुरुदेव*

युगगीता— १६७

# समग्र अस्तित्व का अखंड रूप हैं श्रीभगवान

**( श्रीमद्भगवद्गीता के विश्वरूपदर्शन योग नामक एकादश अध्याय की दसवीं किस्त )**

**[ एकादश अध्याय की नवमी किस्त में सत्रहवें व अठारहवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इनमें से सत्रहवें श्लोक में सारथी संजय, अपने सखा व महाराज धृतराष्ट्र से कह रहे हैं—हे राजन्! आश्चर्यचकित अर्जुन भगवान को निहारते हुए उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं—''हे प्रभु! मैं बड़ी कठिनाई से आपको देख पा रहा हूँ। मेरी इस कठिनाई का कारण है, वह प्रकाश, जो आपके सब ओर से निकल रहा है। आपका यह प्रकाश, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के समान है।'' यथार्थ में श्रीभगवान ही हैं—सभी प्रकार के प्रकाश के आदिस्त्रोत। उन्हीं के प्रकाश के एक अंश मात्र से अग्नि व सूर्य प्रकाशित हैं। ऐसे श्रीभगवान सब तरफ से अप्रमेय हैं। उन्हीं का प्रमाण वह स्वयं हैं। किसी भी तर्क या बुद्धि से उनको प्रमाणित कर पाना संभव नहीं। स्वप्रकाश से प्रदीप्त सभी प्रमाणों से परे भगवान श्रीकृष्ण मुकुट, गदा व चक्र धारण किए हुए हैं। उनका वह मुकुट उनके सर्वसमर्थ सत्ताधीश होने का, गदा उनके पाप विनाशक होने का व चक्र उनके अहं विनाशक होने का प्रतीक हैं।**

**इसके बाद के अठारहवें श्लोक में अर्जुन श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं—''हे भगवन्! आप ही परम अक्षर हैं, आप ही इस सृष्टि में जानने योग्य हैं। इस विश्व के परम आश्रय आप ही हैं। आप अविनाशी सनातन पुरुष हैं। अनादि धर्म के रक्षक आप ही हैं। ऐसा मेरा मत है।'' अर्जुन का यह कथन उनके अपने अनुभव का निष्कर्ष है। यह अनुभव वह प्रभुकृपा से प्राप्त दिव्यदृष्टि द्वारा प्राप्त कर रहे हैं। अनुभव प्राप्त करने के कई तल होते हैं। अनुभव प्राप्त करने का प्राथमिक व प्रारंभिक साधन इंद्रियाँ हैं। इसके बाद के अनुभव मन व बुद्धि से प्राप्त किए जाते हैं, लेकिन इन सभी माध्यमों से प्राप्त होने वाले सभी अनुभव सीमाबद्ध हैं। इनके बारे में प्रमाणित भी किया जा सकता है, परंतु भगवान से संबंधित सभी अनुभव आत्मा के तल पर प्राप्त होते हैं। ये असीम है और अप्रमेय भी। ]**

इतना कहकर अर्जुन श्रीभगवान की अनंत सामर्थ्य व प्रभाव का दर्शन करते हुए अपनी अभिव्यक्ति देते हैं-

**अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-**
**मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।**
**पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं**
**स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥ १९॥**

**शब्दविग्रह**—अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्।

**शब्दार्थ**= हे परमेश्वर! मैं आपको ( **त्वाम्** ), आदि मध्य और अंत से रहित ( **अनादिमध्यान्तम्** ), अनंत सामर्थ्य से युक्त ( **अनन्तवीर्यम्** ), अनंत भुजा वाले ( **अनन्तबाहुम्** ), चंद्र-सूर्य रूप नेत्रों वाले ( **शशिसूर्यनेत्रम्** ), प्रज्वलित अग्निरूप मुख वाले ( **दीप्तहुताशवक्त्रम्** ), अपने तेज से ( **स्वतेजसा** ), इस ( **इदम्** ), जगत को ( **विश्वम्** ), संतप्त करते हुए ( **तपन्तम्** ), देखता हूँ ( **पश्यामि** )।

अर्जुन के इन स्वरों में गहरी अनुभूति है, परमात्मा की। उनकी यह अनुभूति है—व्यापकता की, असीमता की, अनंतता की, साथ ही समस्त क्षुद्रताओं के विनाश की। अपनी इस अनुभूति को अभिव्यक्ति देते हुए वह कहते हैं—''हे परमात्मन्! आप आदि, मध्य व अंत से रहित हैं।'' ऐसी अनुभूति तभी संभव है, जब जीवन की सारी क्षुद्रताएँ विलीन हो जाएँ। कहीं कुछ, किसी कोने में बचा न रह जाए। हाँ! आँखों में अहंता की कोई किरकिरी बची न रहे, तभी दृष्टि इतनी साफ हो सकती है। अनुभूति

इतनी व्यापक हो सकती है और अभिव्यक्ति इतनी साफ व परिष्कृत। आँखों में एक छोटा-सा कण भी अटका रहे तो सामने का पहाड़ भी नहीं दिखाई देता। कहीं कोई अटकन न रहे, कोई भटकन न बचे, तो फिर दृष्टि देख पाती है—व्यापकता को, विशालता को।

अर्जुन की यह स्थिति बन पाई है श्रद्धा व समर्पण से। श्रद्धा स्थापित करती है संवाद, अपने सद्गुरु से, अपने आराध्य से। श्रद्धा से ओत-प्रोत समर्पण देता है अनुभूति। अर्जुन के पास दोनों हैं। इसी बल पर वह श्रीभगवान की अनंतता देख पा रहे हैं। उसे अनुभव कर पा रहे हैं और कह पा रहे हैं, हे प्रभु! आप हैं आदि, मध्य व अंत से रहित। सब तरफ बस, आप ही आप हैं। कहीं कोई और नहीं है। पानी का बुलबुला जब तक अपनी आभासी सीमाओं से घिरा रहता है, तब तक वह असीम सागर की विशाल जलराशि की व्यापकता अनुभव नहीं कर पाता, लेकिन अपनी क्षुद्रता गँवाते ही वह यह अनुभूति पा लेता है। बात बड़ी स्पष्ट है—क्षुद्रता जितनी ज्यादा, अनुभूति उतनी संकीर्ण। इसके विपरीत क्षुद्रता का विनाश जितना संपूर्ण, अनुभूति उतनी ही व्यापक। अर्जुन ने अपनी अहंता गँवाकर शिष्यता प्राप्त की। इसी के द्वारा उसे अनुभव हो पाया—प्रभु की अनंतता का।

वह कहते हैं—हे भगवन्! आपकी सर्वव्यापी अनंतता अनंत सामर्थ्य से युक्त है। इस संसार में समर्थ सभी हैं। यह अलग बात है कि किसी की सामर्थ्य कम है तो किसी की ज्यादा। चींटी की अपनी सामर्थ्य है तो हाथी की अपनी। मानव की अपनी सामर्थ्य है तो दानव की अपनी। देव-देवी भी समर्थ हैं। सभी को अपनी सामर्थ्य का अभिमान भी भारी है। इस अभिमान से न तो चींटी वंचित है, न हाथी, न मानव, न दानव और न देव-देवी। अपने को नगण्य कोई भी नहीं समझता। यह बात अलग है कि प्रकृति की हिलोरें उन्हें उनकी नगण्यता का एहसास कराती रहती हैं। बस, परमेश्वर की सामर्थ्य ही ऐसी है, जिसके सामने सभी नगण्य हैं, क्योंकि अकेले वही हैं, जिनकी सामर्थ्य अनंत है। उन्हीं की सामर्थ्य का एक छोटा-सा अंश पाकर सभी समर्थ बने हुए हैं। प्रभु से जुड़कर उनमें स्वयं को अर्पित कर सृष्टि का प्रत्येक जीव, अपनी, स्वयं की नगण्यता समाप्त कर अनंतता को प्राप्त कर सकता है।

सामर्थ्य आधार है, सभी प्रकार की सक्रियता का। जो जितना अधिक समर्थ होता है, उसकी सक्रियता भी उतनी ही बढ़ी-चढ़ी और बहुआयामी होती है। सक्रियता या क्रियाशीलता का आधार होते हैं—हाथ या भुजाएँ। सामान्य क्रम में हमारी दो भुजाएँ हैं। देवशक्तियों की बढ़ी हुई सामर्थ्य एवं सक्रियता के कारण उन्हें चतुर्भुज, अष्टभुजा आदि रूपों में चित्रित किया जाता है, पर प्रभु की सक्रियता तो सृष्टि व्यापी है। हर रूप में, जीवन के हर आयाम में, वही तो सक्रिय हैं। उनकी अनंत, सर्वव्यापी क्रियाशीलता का एक अंश सभी को सक्रिय बनाए हुए है। एक अर्थ में सबकी समवेत सक्रियता, समष्टि सक्रियता का स्वरूप हैं परमेश्वर, तभी तो वे अनंतबाहु हैं।

सक्रियता हो, सामर्थ्य हो, किंतु दृष्टि न हो तो भूलें स्वाभाविक हैं। दृष्टि हो तो भूलों की संभावना कम हो जाती है। इस संसार में सब कुछ सूर्य व चंद्र से प्रकाशित होता है। सूर्य दिन को प्रकाशित करता है, तो चंद्र रात्रि को। श्रीभगवान के नेत्र यही सूर्य व चंद्र हैं। यही कारण है कि उनसे कोई कहीं भूल नहीं होती। जो सूर्य व चंद्र के प्रकाश का सम्यक प्रयोग करना सीख जाता है, उसे भी भूलों से छुटकारा मिल जाता है। भगवान की दृष्टि, प्रकाश का, ज्ञान का स्रोत है। दृष्टि ही क्यों, वह संपूर्ण प्रकाश का स्रोत है। तभी तो अर्जुन कहते हैं—हे योगेश्वर! आप प्रज्वलित अग्निरूप मुख वाले हैं। अग्नि को देवों का मुख कहा है। संपूर्ण देवशक्तियाँ अग्नि में आहुति डालने से पोषित होती हैं। अग्नि मुख वाले प्रभु ही यज्ञपुरुष हैं। यज्ञपुरुष को तृप्त करने से समस्त सृष्टि—संपूर्ण प्रकृति पोषित होती है।

जिनके नेत्रों में सूर्य व चंद्रमा प्रकाशित हैं, जिनके मुख में अग्नि प्रज्वलित है, ऐसे प्रभु के तेज से यह संपूर्ण जीवन व जगत प्रकाशित व प्रभावित है। इस सत्य को अभिव्यक्त करते हुए अर्जुन कहते हैं—"आपके तेज से यह समस्त जगत संतप्त हो रहा है, ऐसा अनुभव मुझे हो रहा है।" अर्जुन देख रहे हैं—प्रभु के ताप को, उनकी तपन से संतप्त जगत को। ताप ऊर्जा, ऊष्मा का पर्याय है। जगत में, जीवन में समस्त ऊर्जा एवं ऊष्मा का स्रोत स्वयं विश्वरूप परमेश्वर हैं। उनके सिवा कहीं से भी, कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। इसलिए ऊर्जा के लिए, शक्ति के लिए, भगवान श्रीहरि की शरण ही एकमात्र उपाय है।

इतना कहने के बाद अर्जुन आगे कहते हैं—

**द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि**
**व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः**

**दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं**
**लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥ २०॥**

**शब्दविग्रह**—द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तं, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन्।

**शब्दार्थ**= और हे महात्मन्! ( **महात्मन्** ), यह ( **इदम्** ), स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का संपूर्ण आकाश ( **द्यावापृथिव्योः, अन्तरम्** ), तथा ( **च** ), सब ( **सर्वाः** ), दिशाएँ ( **दिशः** ), एक ( **एकेन** ), आपसे ( **त्वया** ), ही ( **हि** ), परिपूर्ण हैं ( **व्याप्तम्** ), तथा आपके ( **तव** ), इस ( **इदम्** ), अलौकिक और ( **अद्भुतम्** ), भयंकर ( **उग्रम्** ), रूप को ( **रूपम्** ), देखकर ( **दृष्ट्वा** ), तीनों लोक ( **लोकत्रयम्** ), अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं ( **प्रव्यथितम्** )।

बड़ी विचित्रता, विलक्षणता व आश्चर्यमयता है—परमात्मा में। चकित अर्जुन कहते हैं—"हे महात्मन्! अभी तक देखा मैंने आपका सम्मोहक स्वरूप, लेकिन अब देख रहा हूँ आपका अद्भुत उग्र रूप।" दरअसल परमात्मा सब कुछ हैं। अस्तित्व की अखंडता है उनमें। पहले बताए गए वर्णन में एक रूप था—सुंदर, मोहक, मनोहर मन को भाए, लुभाए, आकर्षित करे, लेकिन यह तो था एक पहलू। अब दूसरे पहलू की अनुभूति हो रही है, अर्जुन को। वह देख रहे हैं परमेश्वर का ऐसा स्वरूप, जो जीवन को तपाए, अग्निमुख वाला, उग्र, तीनों लोकों को व्यथित करता हुआ है।

जीवन जोड़ है विपरीतताओं का। यहाँ एक छोर है जन्म का, तो दूसरे छोर में मृत्यु है। प्रेम व घृणा; सुख व दुःख; सफलता व असफलता; खाई व शिखर, इन्हीं विरोधों का समुच्चय है जीवन। विरोध, विपरीतताएँ एवं द्वंद्व, इन्हीं का जोड़ है जीवन। यही जीवन की गतिशीलता का आधार है। इस सचाई को हममें से कोई स्वीकार नहीं कर पाता। तभी तो हममें से हर कोई आकांक्षा करता है कि इनमें जो प्रीतिकर है, वह मिल जाए और जो अप्रीतिकर है, वह समाप्त हो जाए, मिट जाए। इस चाहत की विचित्रता तो यह है कि जो ऐसा चाहता है, वह अपनी इसी चाहत के कारण दुःख में गिरता है, क्योंकि इन दो में से एक को बचाया नहीं जा सकता।

यदि कोई चाहे कि शिखर बचे और खाइयाँ मिट जाएँ, तो उसे पागल ही मानना पड़ेगा। शिखर व खाई तो साथ-साथ हैं। एक ही तरंग है, जब शिखर विनिर्मित होता है तो साथ में खाई भी बन जाती है। चाहने वाले तो यह भी चाहते हैं कि जवानी बची रहे, बुढ़ापा न आए, पर ऐसा संभव तो नहीं। यदि जवानी शिखर है, तो बुढ़ापा खाई। जवान होने के साथ ही बुढ़ापे का सिलसिला भी शुरू हो जाता है। जवानी है ही बुढ़ापे का प्रारंभ। जिस दिन जवान हुए, समझो कि बुढ़ापा पास में ही है। कुछ ऐसी ही सोच सुंदरता के बारे में भी है। प्रायः सभी की चाहत यही होती है कि सुंदरता बचे, कुरूपता मिट जाए। इसके लिए न जाने कितने सरंजाम किए जाते हैं। फिर भी एक दिन सुंदरता को कुरूपता में बदलना ही है। तभी तो महाराज भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में लिखा है—**'रूपे जरा भयम्'** रूप को यानी कि सुंदरता को बुढ़ापे का भय है।

संपूर्णता में, समष्टि में अस्तित्व के दोनों छोर हैं। परमात्मा अतिशय सुंदर हैं, तो अतिशय भयावह भी। वह सौम्य से भी सौम्य हैं, तो उग्र से भी उग्र। वह रुद्र हैं, तो शिव भी और दोनों साथ-साथ भी। भगवान श्रीकृष्ण में परमात्मा के ये दोनों रूप एक साथ प्रकट हुए हैं। इसीलिए तो उन्हें समझने में बड़ी कठिनाई होती है। उनके व्यक्तित्व में अनेक द्वंद्वों का जोड़ है। एक तरफ प्रतिज्ञा करते हैं कि युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा, फिर मौका पड़ने पर उठा भी लेते हैं। एक ओर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में प्रथम पूज्य के रूप में पूजा करवाते हैं, तो दूसरी ओर उसी यज्ञ में जूठी पत्तल उठाते हैं, आगंतुकों के पाँव धोते हैं। एक ओर गीता जैसा महान दर्शन, योगविद्या, ब्रह्मविद्या का शास्त्र प्रकट करते हैं तो दूसरी ओर बड़े मजे से गोपियों के साथ नृत्य करते, रास रचाते हैं। उन्हें कहीं पर कोई अड़चन नहीं है। एक तरफ वे प्रेम की बात करते हैं तो दूसरी ओर महाभारत का सर्वनाशी, महाविनाशक युद्ध रचाते हैं। अपने जीवन में एक छोर पर मधुर बंशी की धुन बजाते हैं, तो दूसरी ओर विनाशक शस्त्र सँभालते हैं।

इसीलिए बड़ा कठिन हो गया है उन्हें संपूर्णता में स्वीकारना। उनके भक्तों ने उनका बँटवारा कर दिया है। कोई बाल रूप में स्वीकारता है, तो कोई किशोर या युवा रूप में। किसी के आराध्य बंशीवादक हैं तो किसी के गीतागायक, लेकिन इससे क्या, वे तो संपूर्ण हैं, एक साथ सब कुछ। अर्जुन को वे अपनी यही अनुभूति प्रदान कर रहे हैं। उनकी यह संपूर्णता सर्वव्यापी है। अर्जुन अनुभव कर रहे हैं कि भगवान श्रीकृष्ण पृथ्वीलोक, द्यौलोक व संपूर्ण अंतरिक्ष में व्याप्त हैं। सभी दिशाएँ उनके इस अद्भुत व उग्र स्वरूप से व्याप्त हैं। एक वही हैं, जिनसे सब कुछ परिपूर्ण है। वह कह रहे हैं—"हे महात्मन्!

आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।

बड़ा विलक्षण अनुभव है, परमात्मा को व्यथा के रूप में अनुभव करना। जीवन में व्यथा होती है किसलिए? बीमारी है, दुःख है, मृत्यु है। अकेली मृत्यु ही गहन दुःख है और सारे दुःख तो केवल उसी की छाया में हैं। आदमी कंपित है, दुखी है, भयभीत है मिटने के डर से। अर्जुन ने अनुभव किया अग्निमुख परमात्मा की इस विचित्रता को। उन्होंने देखा कि सभी प्राणी प्रभु के कालाग्नि मुख में समाते जा रहे हैं। भागे जा रहे हैं, सभी मृत्यु की ओर, फिर चाहे वे कुछ भी कर रहे हों। भले वे दुकान जा रहे हों, भले वे मकान बना रहे हों, मंदिर, मसजिद, चर्च या गुरुद्वारा जा रहे हों या फिर वापस आ रहे हों, अपने घर की ओर। लेकिन न तो जाने का कोई अर्थ है न तो आने का। किसी भी दिशा में कोई कहीं से भी जा रहा हो, पर जा रहा है। वह केवल बस, केवल मृत्यु के मुख में। घर-दुकान, मकान या मंदिर का कोई अर्थ नहीं है। हर हालात में, हर कोई मृत्यु के मुख में ही जा रहा है।

बड़ी गहन विचित्रता है अर्जुन के इस अनुभव में। परमात्मा का विकराल अग्निमुख, जिसमें सभी समाते जा रहे हैं। सारे लोक-लोकांतर, सभी प्राणी मौत के मुख में समा रहे हैं, समाते जा रहे हैं। जरा आँख बंद करके इस सचाई को सोचा जाए। इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पढ़ते-पढ़ते आँख बंद करके सोचें कि हम सभी एक साथ सरक रहे हैं, प्रभु के कालाग्नि मुख में। कोई थोड़ा, कोई ज्यादा, कोई आज मरने वाला है, तो कोई कल। बस, समय का थोड़ा-सा फासला है। सच यही है कि हम सभी लाशें हैं, जिन पर तारीखें लिखी हैं कि कब घोषणा हो जाएगी। लाशें चल रही हैं, गिर रही हैं, उठ रही हैं, और काँप रही हैं; क्योंकि वह तारीख अभी थोड़े दिनों बाद है।

रूस के अति विलक्षण संत गुरजिएफ का कहना था कि अगर इस सारी धरती को धार्मिक बनाना हो तो केवल एक उपाय है। अपने इस उपाय के बारे में उनका कहना था कि वैज्ञानिकों को सारी चिंता छोड़कर एक मशीन खोज लेनी चाहिए, जो बिलकुल घड़ी की तरह हो। जिसे हर आदमी के हाथ पर बाँध दिया जाए। जो हमेशा बाँधने वाले को बताती रहे कि अब मौत कितने करीब है। उसका काँटा निरंतर घूमता रहे। यह अनुसंधान कठिन तो जरूर है, पर असंभव नहीं है। ऐसा हो जाए तो समझो कि भगवान का यह व्यथित करने वाला रूप जो सर्वत्र, सब ओर, सभी दिशाओं में सबको एक साथ अनुभव होता रहेगा।

**एक बार भगवान विष्णु के मन में विचार आया कि मनुष्य को बनाए और संसार की व्यवस्था सौंपे बहुत वर्ष बीत गए। चल कर देखना चाहिए कि वह क्या कर रहा है? ऐसा सोचकर वह धरती पर पहुँचे। भगवान के आगमन का समाचार सुनकर अनेक पृथ्वीवासी उनसे मिलने पहुँचे। भगवान ने गीता की व्याख्या करनी आरंभ की, कर्त्तव्य, धर्म का ज्ञान देना प्रारंभ किया, परंतु किसी ने उस चर्चा में रस लेना आरंभ नहीं किया। सभी अपनी मनोकामना को पूर्ण कराना चाहते थे।**

**भगवान ने बार-बार समझाया कि कामनाओं की पूर्ति कर पाना संभव नहीं, आत्मज्ञान ही एकमात्र मार्ग है, पर किसी ने कुछ नहीं सुना और मात्र कामनाओं की पूर्ति का ही आग्रह करते रहे। भगवान खीजकर बदरीनाथ चले गए, पर मनुष्य वहाँ भी पहुँच गए, तब भगवान द्वारका जी में जाकर बैठ गए। कामनापूर्ति चाहने वालों की भीड़ वहाँ भी पहुँच गई। अंततः भगवान ने निश्चय किया कि मनुष्य के हृदय में निवास करेंगे। मूढ़ व्यक्ति उनकी तलाश बाहर करते हैं, पर वो तो हमारे भीतर बैठे हैं।**

चेतना की शिखर यात्रा — १३६

# ममता के संरक्षण में

**विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने अज्ञातवास के क्रम में देवात्मा हिमालय की यात्रा पर निकले हुए थे। इस अवधि में गायत्री तपोभूमि में नवरात्र अनुष्ठान के लिए आने वाले इच्छुक साधकों के पत्र निरंतर पहुँच रहे थे, जिनका प्रत्युत्तर परम वंदनीया माताजी नियमित रूप से भिजवा रहीं थीं। भले ही स्थूलरूप से गुरुवर मथुरा में नहीं थे, किंतु उनकी सूक्ष्म उपस्थिति को हर व्यक्ति अपने साथ सघनता से अनुभव कर रहा था। परम वंदनीया माताजी का स्नेह व दुलार भी गुरुदेव की अनुपस्थिति अनुभव नहीं होने दे रहा था। तपोभूमि के सभी कार्यकर्त्ता एवं अनुष्ठान हेतु आने वाले सभी साधक अपने आप को ममत्व के संरक्षण में पा रहे थे। इसी क्रम में चल रही चर्चा के मध्य कार्यकर्त्ताओं ने महाराष्ट्र के एक सज्जन श्री गौवरीकर जी का संस्मरण सभी के साथ साझा किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....**

आचार्यश्री की इन बातों ने गौवरीकर को एक बार फिर हैरत में डाल दिया। अखण्ड ज्योति संस्थान में माताजी की कही हुई बात आचार्यश्री को कैसे पता चली? उस जमाने में तो तपोभूमि और अखण्ड ज्योति संस्थान के बीच टेलीफोन की सुविधा भी नहीं थी। गौवरीकर की दुविधा दूर करते हुए आचार्यश्री ने कहा—"बेटा हम और माताजी कोई दो थोड़े ही हैं। बस, बाहर से दीखने के लिए दो हैं। भीतर से तो सब कुछ एक ही है।"

मध्यप्रदेश के ग्रामीण अँचल की एक साधक शिवरानी देवी ने भी इसी से मिलती-जुलती स्थिति अनुभव की। मामूली पढ़ी-लिखी यह महिला साधना-उपासना के मामले में नियमित और निष्ठावान थी। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर सुबह तीन घंटे तक वह नियमित जप करती। दिनचर्या के दूसरे काम निपटाते हुए भी उसका मानसिक जप चलता रहता। वह सूर्यमंडल में स्थित गायत्री माता का ध्यान जप के साथ करती थी।

नियमित साधना के दौरान एक दिन ध्यान की अवस्था में उन्हें विचित्र अनुभव हुआ। वे गहरे ध्यान में डूबी हुई थीं। सूर्यमंडल में स्थित गायत्री माता की छवि को निहारते हुए मन जैसे खो गया था। उस छवि में उन्हें अचानक माताजी की झलक दिखाई देने लगी। निरभ्र अनंत आकाश में वह छवि विराट रूप लेती जा रही है। सारे ग्रह-नक्षत्र उस तेजोमयी मूर्ति के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे हैं। धीरे-धीरे सब कुछ उनमें लीन होता चला जा रहा है। तभी प्रतीत होता है कि आचार्यश्री की छवि भी उसी प्रकाश से निकल रही है। माताजी की छवि लुप्त हो गई है, फिर माताजी दिखाई दीं और आचार्यश्री की छवि विलीन हो गई। कुछ क्षण बाद दोनों साथ दिखाई दिए। इस तरह के बिंब कई बार उभरते और बिखरते रहे। आनंद की विचित्र अनुभूति हो रही थी।

ध्यान से उठने के बाद भी मन उसी भावदशा में डूबता-उभरता रहा। आचार्यश्री के अज्ञातवास से वापस आने के बाद शिवरानी ने अपने गुरुदेव को इस अनुभव के बारे में बताया। आचार्यश्री ने उनसे कहा—"बेटी! आदिशक्ति ही इस सृष्टि की जननी हैं। उनके कई रूप हैं। जैसी हमारी भावना होती है, वैसी ही आकृति बन जाती है। वैसे माताजी के बारे में जो तुम्हारे भाव हैं, वे सही हैं। मैं उनसे जरा भी अलग नहीं हूँ।"

आचार्यश्री के हिमालय जाने के बाद कई साधकों को तरह-तरह की अनुभूतियाँ हुईं। उनका संदेश एक ही था कि लौकिक दृष्टि से दोनों का अस्तित्व अलग होते हुए भी मूलतः एक ही हैं। अंतःसलिला सरस्वती गंगा और यमुना

को जोड़ती हुई जैसे प्रयाग में प्रकट होती है, उसी तरह चेतना की उच्चतम उत्कृष्ट धारा उन दोनों में व्यक्त हुई है।

आचार्यश्री के हिमालय जाने के बाद माताजी पर कई नई जिम्मेदारियाँ आ गई थीं। आंतरिक दृष्टि से दोनों में कैसा ही अद्वैत अभेद हो, व्यवहार में तो फरक पड़ता ही है। माताजी की अपनी जिम्मेदारियाँ अपने स्थान पर थीं और आचार्यश्री की सौंपी हुई जिम्मेदारियाँ अपने स्थान पर। ये जिम्मेदारियाँ अतिरिक्त ही कही जाएँगी। इनमें साधकों के आए पत्रों के उत्तर देना, अखण्ड ज्योति पत्रिका का संपादन प्रकाशन और गायत्री तपोभूमि की व्यवस्था सँभालने जैसे कई काम थे। अतिरिक्त दायित्वों में सहयोग देने के लिए कुछ कार्यकर्त्ताओं को भी चुना गया, लेकिन वे सभी कसौटी पर खरे नहीं उतर रहे थे।

आचार्यश्री के जाने के बाद माताजी ने निर्वाह करने के लिए एक नई व्यवस्था रची। साधकों के भोजन की व्यवस्था के लिए दो सहायक नियुक्त कर लिए और सफाई में भी वह इन्हीं से मदद लेने लगीं। अखण्ड ज्योति संस्थान में तब पंद्रह-बीस व्यक्तियों का भोजन नियमित बनता था। इस काम में सहायता मिलने से माताजी को दिन में लगभग चार घंटे का समय मिलने लगा। वे साधकों को भोजन तो अपने सामने ही करवाती थीं, बीच-बीच में रसोई में भी झाँक लेती थीं।

पत्रिकाओं के संपादन को लेकर कभी कोई कठिनाई नहीं आई। आचार्यश्री ने पिछले छह महीनों में अपनी देख-रेख में सामग्री संकलन से लेकर संपादन और अन्य व्यवस्थाओं की बारीकियों का प्रशिक्षण दे दिया था। इस काम में सहायता के लिए चुने हुए कार्यकर्त्ता भी कुछ हाथ बँटाते ही थे। मुख्य काम साधकों की भावनाओं का निर्वाह और समस्याओं का समाधान करना था। यह सब जिस तरह चलता रहा वह बाद में, पहले यह जानना मजेदार रहेगा कि लोग किस तरह की अड़चनें पैदा करते थे। आचार्यश्री के अज्ञातवास जाने की बात को कुछ द्वेषी धर्मगुरुओं ने मुद्दा बनाया। उन्होंने प्रचारित किया कि आचार्यश्री मथुरा छोड़ कर चले गए हैं। महायज्ञ के समय की बहुत-सी देनदारियाँ बाकी हैं, उनसे मुँह चुराने के लिए छिप गए हैं। इस तरह के अपवादों का कोई जवाब नहीं था।

### अज्ञातवास के उत्पात

आचार्यश्री अपने पीछे जिन कार्यकर्त्ताओं की टीम छोड़ गए थे उनमें कुछ को यह भ्रम होने लगा कि गायत्री तपोभूमि और परिवार की गतिविधियाँ उन्हीं के कारण सुचारु चल रही हैं। अहम् के टकराव जिस प्रकार के विग्रह खड़े करते हैं, वैसे ही विग्रह तपोभूमि में भी होने लगे थे। कुछ कार्यकर्त्ता एकदूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। माताजी तक वह बात जानती थीं, लेकिन वे प्रायः अनसुनी कर देती थीं। उनकी कोई प्रतिक्रिया न देखकर कार्यकर्त्ता समझते थे कि शायद उन्हें झगड़ों के बारे में पता नहीं है। तीन-चार कार्यकर्त्ताओं में चुपचाप आपसी द्वंद्व चलता रहा। न केवल चलता रहा, बल्कि वह बढ़ता गया। हालात झगड़े-फसाद तक पहुँच गए। झगड़ा पहली बार होता ही था कि माताजी ने हस्तक्षेप किया। वे तपोभूमि गईं और कार्यकर्त्ताओं को एक जगह इकट्ठा किया। सभी के एक जगह बैठ जाने के बाद उन्होंने कहना शुरू किया—"बेटा! मैं तुममें से हरेक को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ। तुम लोग इतने दिनों जो भी करते रहे हो उससे मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। मैं इस भीड़ में किसी का नाम लेकर उसे शर्मिंदा तो नहीं करूँगी, पर तुममें से जिसने जो कुछ किया, उसके कामों का खुलासा कर देती हूँ।"

**युग-परिवर्तन जैसा महान कार्य होता तो भगवान की इच्छा, योजना एवं क्षमता के आधार पर ही है, पर उसका श्रेय वे ऋषिकल्प जीवनमुक्त आत्माओं को देते रहते हैं, यही उनकी साधना का, पात्रता का सर्वोत्तम उपहार है। हमें भी इस प्रकार का श्रेय, उपहार देने की भूमिका बनी और हम कृतकृत्य हो गए। हमें सुदूर भविष्य की झाँकी अभी से दिखाई पड़ती है, इसी कारण हमें यह लिख सकने में संकोच रंचमात्र भी नहीं होता।**

*— परमपूज्य गुरुदेव*

इतना कहकर माताजी ने उपद्रव मचा रहे कार्यकर्त्ताओं के कारनामे सुनाना शुरू किए। इन कारनामों में आर्थिक गड़बड़ियों के अलावा विद्वेष फैलाने, कुचक्र रचने और एकदूसरे को नीचा दिखाने की कई गतिविधियाँ थीं। उन्होंने किसी का नाम नहीं लिया, सिर्फ अभी तक की ज्ञात और अज्ञात घटनाओं का खुलासा भर किया। जो घटना जिसके बारे में थी, उसने सुनी और सुनकर सिर झुका लिया। उन कार्यकर्त्ताओं को अपनी गलती या दुर्भावना का पता तो था ही। जब यह अनुभव हुआ कि संस्था प्रमुख की जानकारी में राई रत्ती बात है, फिर भी उनकी ओर से क्षमा किया जाता रहा है। पता नहीं क्यों? उस 'क्यों' का उत्तर तलाशते हुए लोग अवाक् थे।

दोष और गलतियाँ गिना चुकने के बाद माताजी ने कहा—''मैं अभी तक चुप रही हूँ तो इसका कारण यह नहीं था कि मुझे पता नहीं था या तुम लोगों से कोई डर था। सिर्फ इसलिए चुप रही हूँ कि मैं तुम लोगों के सुधरने का इंतजार कर रही थी। सोच रही थी कि आज नहीं कल, गलती का एहसास होगा और तुम लोग सही रास्ते पर आओगे। तुम लोग गलतियाँ कर रहे थे और फिर भी अधिकार के नशे में चूर हुए जा रहे हो तो यह मत समझो कि वे गलतियाँ सहन की जा रही हैं।''

माताजी यह कह ही रही थीं कि उन कार्यकर्त्ताओं को कँपकँपी छूट गई। उन्हें लगा कि अब माताजी कोई फैसला सुनाने वाली हैं। वह फैसला दंड के रूप में ही होगा। हो सकता है वे आश्रम से चले जाने के लिए कहें। किसी कार्यकर्त्ता के मन में इस आशंका का प्रतिरोध भी उभरा। वह सोचने लगा कि आश्रम छोड़कर जाने के लिए कहेंगी तो व्यवस्था लड़खड़ाने का डर है। यह बात माताजी भी अच्छी तरह समझती हैं। इस आधार पर हम लोग अकड़ दिखा सकते हैं। दंड सुनाने की स्थिति में क्या कहना है?

इस बारे में कार्यकर्त्ता सोच ही रहे थे कि माताजी ने कहा—''तुम लोगों की हरकतों से वाकिफ होते हुए भी मैं चुप रही तो सिर्फ इसलिए कि तुम लोगों के चित्त बच्चों की तरह हैं। उनमें गलतियों का अनुभव होने और एहसास करा देने के बाद सुधर जाने की संभावना है। नहीं सुधरोगे तो जो सत्ता इस संस्थान को चला रही है, वह तुम्हें सबक सिखाएगी। यह चेतावनी उसी सत्ता की ओर से है। रह गई इस आंदोलन की बात तो यह मत समझना कि उसमें कोई रुकावट आएगी। इस आंदोलन को भगवान ने जन्म दिया है। वही इसे बढ़ा रहे हैं। चाहे जितने लोग जैसे भी और जिस किसी भी वजह से इसका विरोध करें, कुछ नहीं होना है। इस आंदोलन को हर हाल में बढ़ना ही है।''

उपद्रव मचा रहे लोगों को अपनी गलती का बोध हुआ। मन में जो उद्दंडता जाग रही थी उस पर जैसे पानी पड़ गया। वे पछतावे में पड़ गए। ग्लानि और क्षोभ ने मिलकर उनकी आँखों में आँसू भर दिए और वे रोते हुए माताजी के सामने झुक गए। उन्हें प्रणाम करते हुए माफी माँगने लगे। माताजी ने उन्हें दुलारते हुए कहा—''माफी माँगने की जरूरत नहीं है। तुम लोग मन से बच्चे हो और बच्चों से गलती हो ही जाती है। उठो और अपने-अपने काम में लग जाओ।''

आश्रम-व्यवस्था में आ रहे व्यतिरेक का समाधान स्नेह-दुलार से करने के बाद माताजी तपोभूमि आने लगी थीं। साधकों और कार्यकर्त्ताओं का संबंध प्राय: अखण्ड ज्योति संस्थान से ही रहता था। वे वहीं से मार्गदर्शन प्राप्त करते थे, लेकिन वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं ने अनुभव किया कि कुछ समय के लिए माताजी को तपोभूमि भी आना चाहिए। उन्होंने इसके लिए दोपहर का समय चुना। कभी-कभार वे सुबह के समय भी आ जाती थीं। उस समय तपोभूमि में यज्ञ-हवन चल रहा होता था। आश्विन के नवरात्रे बीत गए थे और पिछली घटनाओं का कहीं भी उल्लेख किए या दोहराये बिना तपोभूमि के काम व्यवस्थित चल रहे थे।

गायत्री तपोभूमि के कार्यकर्त्ता ही नहीं शाखाओं में सक्रिय साधकों को भी माताजी का सान्निध्य आश्वस्त करने लगा था। चैत्र नवरात्रों में चौबीस साधकों को बुलाने की बात उठी तो गोष्ठी में थोड़े से प्रश्न उठे। उनका समाधान करते हुए माताजी ने यही कहा कि इतने साधकों को बुलाने का निर्देश आचार्यश्री की ओर से ही आया है।

माताजी का यह उत्तर सुनकर कार्यकर्त्ता चुप हो गए। अधिकांश का समाधान हो गया, लेकिन कुछ को आशंका भी हो रही थी। उनके अनुसार माताजी सीधी-सादी सरल गृहिणी हैं। वे स्नेह कर सकती हैं, ममता लुटा सकती हैं और साधकों का ध्यान रख सकती हैं, लेकिन जहाँ व्यवस्था के क्षेत्र में दृढ़ निर्णय लेने की आवश्यकता होती है तो वहाँ पीछे हट सकती हैं। अमृतलाल नामक कार्यकर्त्ता ने इस गोष्ठी के बाद तुरंत कहा था कि समग्र शिविर चलाने में कठिनाई आएगी। वे चार-पाँच उपद्रवी कार्यकर्त्ताओं को क्षमा और स्नेह ही कर पाईं। आवश्यक यह था कि उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की जाती।

अमृतलाल का अब भी यही मानना था कि माताजी पर भावपक्ष हावी है, इसलिए वे मजबूत फैसले नहीं कर पातीं। उनकी और उनके जैसे कुछ और लोगों के लिए चैत्र नवरात्रे परीक्षा की घड़ी थे। नवरात्र शिविर आरंभ हुआ तो उन जैसे कार्यकर्त्ताओं को देखकर आश्चर्य हुआ कि चौबीस ही साधक आए हैं। इतने लोगों को ही स्वीकृति दी गई थी। प्रथम नवरात्र की पूर्व संध्या तक सभी साधक आ गए थे। (क्रमश:)

# गायत्री परिवार का उद्देश्य – पीड़ा और पतन का निवारण

(पहली किस्त)

**विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस प्रेरक उद्बोधन में गायत्री परिवार का उद्देश्य परिभाषित करते हुए कहते हैं कि हमारे परिवार के प्रत्येक परिजन का एकमात्र लक्ष्य समाज की पीड़ा और पतन का निवारण होना चाहिए। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि इसी आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शांतिकुंज की स्थापना की गई है और यहाँ से इसी प्रशिक्षण को प्राप्त कर सभी परिव्राजकों को समाजसेवा हेतु निकलना चाहिए। आध्यात्मिकता का अर्थ माला घुमाना नहीं, अपितु जीवन को समर्थ और सशक्त बनाना है। हमारा उद्देश्य मनुष्य के चिंतन, चरित्र और व्यवहार को परिष्कृत करना हो, लोगों की भीड़ बढ़ाना नहीं। गुणवत्ता ही हमारा मानक बने, संख्या में बढ़ोत्तरी नहीं। परमपूज्य गुरुदेव कहते हैं कि यही अध्यात्म का संदेश है, गुरु परंपरा का संदेश है और गायत्री परिवार का संदेश है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....**

## अंत:करण की विशेषता

मित्रो! आप इस बात पर ध्यान देना कि जनता का स्वभाव इस तरह हुआ कि नहीं। ओपका चुंबकत्व उन्हें प्रभावित कर सका कि नहीं कर सका। साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना कि आपकी लगन और आपकी निष्ठा इस आस्था में लगी हुई है कि नहीं। अगर आपकी आस्था जमी हुई है, तो कोई चिंता की बात नहीं है कि कोई आदमी आपको सुनता है या नहीं और कोई आदमी आपको समझता है या नहीं और कोई आदमी आपकी ओर ध्यान देता है कि नहीं। आप अपने आप में ही काफी हैं। आप स्वयं के द्वारा, अपने चरित्र के द्वारा, अपने क्रियाकलापों के द्वारा, अपनी भावना के द्वारा, अपने मस्तिष्क के द्वारा, अपने अंत:करण के द्वारा इस वायुमंडल में एक ऐसा वातावरण पैदा कर रहे होंगे, एक ऐसी हवा पैदा कर रहे होंगे और एक ऐसी फिजा पैदा कर रहे होंगे, जो आप चुपचाप रहते हुए भी न जाने क्या से क्या पैदा करके दिखा सकते हैं।

मित्रो! हमारे गुरुदेव भी इसी प्रकार के हैं। वे बहुत दूर रहते हैं। यहाँ से बहुत दूर, जहाँ मनुष्यों का कभी जाना संभव नहीं होता। उन्होंने अपनी जबान का, अपनी वाणी का कभी इस्तेमाल नहीं किया। शक्ति होते हुए भी अपनी जिंदगी में कभी व्याख्यान नहीं दिया। किसी को कभी गुरुदीक्षा नहीं दी। मुझे भी जब वे बुलाते हैं, तो ज्यादा से ज्यादा चार दिन के लिए बुलाते हैं और मौन बैठे रहते हैं। मुँह से, जबान से एक शब्द भी नहीं निकालते, लेकिन उनके पुण्य के प्रभाव से, शक्ति के प्रभाव से, तेज के प्रभाव से, ब्रह्मवर्चस के प्रभाव से समीप में जो कोई भी आदमी आता है, प्रभावित होता हुआ चला जाता है, बढ़ता हुआ, हिलता हुआ, काँपता हुआ चला जाता है। यह विशेषता उनकी वाणी की विशेषता नहीं है। उनकी क्रियाओं की विशेषता नहीं है। उनके पैसे की विशेषता नहीं है। यह उनके अंत:करण की विशेषता है।

## कौन है योगी, कौन है तपस्वी ?

मित्रो! आप यहाँ से जाने के पश्चात योगी बनकर रहना और तपस्वी बनकर रहना। योगी और तपस्वी की परिभाषाएँ आपको मैं कल बता चुका हूँ। आप भूलना मत। आप भूल जाएँगे तो मुश्किल हो जाएगी। आप फिर

नाक में से पानी पीने को योग कहना शुरू कर देंगे और गले में से रस्सी डालने को योग कहना शुरू कर देंगे और टट्टी के रास्ते पानी चढ़ाने को योग कहना शुरू कर देंगे। आप नाक में से हवा निकालने को योग कहना शुरू कर देंगे। योग का यह आशय नहीं है, मैं आपको कितनी बार समझा चुका हूँ। योग का इन सबसे कोई ताल्लुक नहीं है। यह अभ्यास है, क्रियाकलाप है, जिससे शरीर को अच्छा रखा जा सके। यह सूत्र है, प्रक्रिया है, योग नहीं है। आप यहाँ से जाने के पश्चात अपने आप को योगी बनाए रखने के लिए तप करना। आप अपने आप को भावनाओं में मत बहने देना। आप हमेशा यह विचार करना कि हम किसी व्यक्ति विशेष की संपत्ति नहीं हैं और हम किसी कुटुंब विशेष की संपत्ति नहीं हैं और हमारा मन किसी घर विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है और किसी खानदान विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है।

मित्रो! वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात और पीला कपड़ा पहनने के पश्चात आपको भले से ही किसी घर में रहना पड़े, इसके लिए मैं आपको मजबूर नहीं करता और यह भी नहीं कहता कि जो बच्चे आपके बाकी रह गए हैं, उनकी सेवा नहीं करना चाहिए। उनका पालन-पोषण नहीं करना चाहिए, मैं यह भी नहीं कहता, पर मैं यह अवश्य कहता हूँ कि आप अपनी मन की स्थिति को बदल देना। आप अपनी मन:स्थिति को इस प्रकार बदल देना कि हम किन्हीं खास आदमियों की संपदा नहीं हैं और हमारा कोई खास घर नहीं है। हम किसी खास वस्तु से जुड़े हुए नहीं हैं। अब हमारा कायाकल्प हो गया है और हमारे जीवन की नई दिशाएँ बन गई हैं। अब हम समाज की संपत्ति हैं। अब हम धर्म की संपत्ति हैं। अब हम भगवान की संपत्ति हैं। अब हम राष्ट्र की संपत्ति हैं और हम संस्कृति की संपत्ति हैं। अब हम व्यक्ति विशेष की संपत्ति नहीं हैं। अगर आप मन का यह कायाकल्प करने में समर्थ हो गए और मन का स्तर बदलने में समर्थ हो गए, तो मैं आपको सच्चा वैरागी कहूँगा और सच्चा संन्यासी कहूँगा।

## गृहस्थ संन्यासी कैसे बनें

मित्रो! आप संन्यासी हो जाएँ, आप वैरागी हो जाएँ, आप गृहस्थ बने रहें तो भी कोई हर्ज नहीं है। संतों, ऋषियों में से अधिकांश गृहस्थ थे। जितने भी देवी-देवता थे, सबके सब गृहस्थ थे, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। शंकर जी भी गृहस्थ थे। उनके दो बच्चे भी थे। दो बच्चों के अलावा उनके पास बैल था, शेर था और उनके बेटों के पास चूहा था, मोर था। सारे का सारा सर्कस लेकर वे चलते थे। कौन? शंकर जी। बजाने के लिए डमरू, चलाने के लिए त्रिशूल और ढेर सारा सरंजाम लेकर शंकर जी और उनका खानदान चलता था। वे गृहस्थ थे। ऐसा नहीं है कि आप गृहस्थ रहते हैं, तो आप योग्य नहीं हो सकते और सुयोग्य व्यक्ति नहीं हो सकते, महामानव नहीं बन सकते। गृहस्थ जीवन आपके मार्ग में बाधक नहीं बन सकता। मैं तो स्वयं गृहस्थ बनकर के रहा, ताकि मैं लोगों को यकीन दिला सकूँ, इस बात का विश्वास दिला सकूँ कि गृहस्थ रहने से किसी का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है।

मित्रो! आदमी का नुकसान गृहस्थ होने से नहीं होता है। नुकसान आदमी का लोभी होने से होता है, मोहग्रस्त होने से होता है। आदमी का विनाश लोभी होने से होता है, गृहस्थ होने से नहीं होता है। संत-बाबा जी भी ऐसे हो सकते हैं, जिन्होंने ढेरों की ढेरों संपदा कमाई और

**शुचिं पावकं ध्रवम्।**

**उनकी प्रशंसा करो, जो धर्म पर दृढ़ हैं।**

मरने के समय तक धन का मोह, स्थान का मोह, आश्रम का मोह उन्हें बना रहा। उनको मैं गृहस्थ कहूँगा। उनको मैं संन्यासी नहीं कह सकता। मैं ऐसे असंख्य गृहस्थों को जानता हूँ, जिन्होंने अपने बच्चों का तो पालन किया, उसी तरीके से किया, जिस तरीके से माली अपने बगीचे का पालन किया करता है। पालन करने के बाद वह समझ जाता है कि यह पौधा हमारा नहीं है, वरन यह मालिक का है। हम मालिक के पौधे की देख-भाल इसलिए करते हैं; क्योंकि वह हमें रोटी खिलाता है। इसलिए हमें उसके पौधों को सींचना चाहिए, पौधों को बड़ा बनाना चाहिए। यह संपदा हमारी कैसे हो सकती है?

## मालिक नहीं, माली बनें

मित्रो! आप जहाँ कहीं भी रहें, जहाँ कहीं भी जाएँ, मालिक बनकर नहीं, माली बनकर रहें। इससे आपका अहंकार गलता हुआ चला जाएगा और आपका प्रभाव बढ़ता हुआ चला जाएगा। अगर आपने ऐसी मन:स्थिति

बना ली और इस बात पर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया कि जो लोग आपके संपर्क में आए, उन पर आपने कैसी छाप डालने की कोशिश की और कैसा प्रभाव छोड़कर के आए। मैं इस बात की तलाश करूँगा कि जहाँ भी आप गए थे, वहाँ हिलने-मिलने का, व्यवहार करने का आपका क्रम क्या रहा? अगर आप यह छाप छोड़कर आए कि हम शांतिकुंज से आए हैं और वहाँ जो विचारधारा दी जाती है, जो प्रेरणाएँ दी जाती हैं, जो दिशाएँ दी जाती हैं, उन तीनों को लेकर आपने अपनी इज्जत को कैसे बढ़ाया और हमारी इज्जत को कैसे बढ़ाया और हमारे मिशन की इज्जत को कैसे बढ़ाया; हम यही देखना पसंद करेंगे। आपकी वाणी का व्यवहार कैसा रहा। लोगों के साथ में आपने अपनी वाणी की मिठास का किस तरह से इस्तेमाल किया। जहाँ आप गए थे, वहाँ बात-बात पर लड़ाई करके आए होंगे, बात-बात पर झगड़ा करके आए होंगे, तो हमको बुरा लगेगा।

मित्रो! आप अपनी वाणी का सही प्रयोग करना और ठीक रूप में इस्तेमाल करना। वहाँ इस बात का अहंकार मत होने देना कि हम पहले अमीर आदमी थे, मालदार आदमी थे, जमींदार थे। हम पहले वकील थे, डॉक्टर थे, इंजीनियर थे। यह क्या है? अहंकार है। आप अपना अहंकार जितना ज्यादा अपने मुँह से बताने की कोशिश करेंगे, उतना ही समझदार व्यक्तियों की श्रेणी में आपका छोटापन जाहिर होता हुआ चला जाएगा कि यह आदमी बड़ी कच्ची तबीयत का आदमी है और बड़ी कमजोर तबीयत का आदमी है। पुराने जमाने में आप वकील थे, तो हम क्या कर सकते हैं? आप वकील थे तो आपने रुपये कमाए होंगे, आपने रोटी खाई होगी। इससे हमें क्या लेना-देना? हमें तो आप अभी की बात बताइए कि इस समय आपकी मन:स्थिति क्या मनुष्य सेवा के लिए तत्पर है? सेवा की वृत्ति आपके मन में है क्या? आप पुराने किस्से बताकर हमारे ऊपर रौबदारी क्यों करना चाहते हैं? आप तो हमें इस समय की बात बताइए कि आप इस समय क्या हैं?

इसलिए मित्रो! आप अपनी कमजोरियों को जाहिर न होने दें। आप श्रेष्ठ, समझदार और बलवान व्यक्ति हो करके वहाँ जाइए, जहाँ हम आपको भेज रहे हैं। आप सशक्त होकर जाएँ जिससे लोगों के अंदर आप इतनी प्रेरणा उत्पन्न करने में समर्थ हो जाएँ। लोगों को अज्ञान और लोभ-मोह से हटाने में कितने समर्थ हुए, कितनी सफलता प्राप्त की, यही आपकी कसौटी है। इस पर आपको अपने आप को, अपने कार्यों को, हमारे कार्यों को कसना चाहिए।

**क्यों कहलाते थे हम जगद्गुरु**

मित्रो! यह आपका मिशन, जिसके लिए आपने वक्त देना—समय देना मंजूर कर लिया, जिसके आप सरपरस्त हैं। इसकी महिमा और गरिमा के बारे में जितना ज्यादा आपका विश्वास होगा, जितनी ज्यादा आपकी निष्ठा होगी, उतनी ही ज्यादा निष्ठा और विश्वास आप लोगों में पैदा करने में समर्थ होंगे। यह जमाना निष्ठाओं से रहित है। यह जमाना भावनाओं से रहित है। इस जमाने में वे उच्चस्तरीय सिद्धांत और आदर्श न जाने कहाँ से कहाँ गायब हो गए जो कि हमारे ऋषियों की विरासत थी, संपदा थी, उसे लोगों ने खो दिया। हम लोगों ने उन विशेषताओं को खो दिया, जिसके आधार पर हम सारे संसार के जगद्गुरु कहलाते थे।

मित्रो! हमने वे विशेषताएँ खो दीं, जिनके आधार पर हम किसी समय दुनिया के चक्रवर्ती शासक कहलाते थे। वे विशेषताएँ हमने खो दीं, जिनके आधार पर हम किसी जमाने में स्वर्ण-संपदाओं के मालिक कहलाते थे। वे सब विशेषताएँ हमने खो दीं, जिनके आधार पर यहाँ का हर नागरिक देवता कहलाता था और यह देवताओं का देश कहलाता था। यहाँ के निवासियों में जो आध्यात्मिक विशेषताएँ थीं, वे सब खतम हो गईं, नष्ट हो गईं। भौतिक विशेषताएँ बढ़ीं या नहीं बढ़ीं, मुझे नहीं मालूम। भौतिक विशेषताओं के बारे में जो मैं जानता हूँ, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि भौतिक विशेषताएँ यदि आदमी की बढ़ती हुई चली जाएँ, तो उससे बरबादी के अलावा और क्या हासिल हो सकता है? मैं कई बार अमेरिका का उदाहरण दिया करता हूँ। बढ़ती हुई भौतिकता के कारण वहाँ के लोगों ने अपनी दिमागी सेहत को गँवा दिया है। वहाँ के अधिकांश आदमी ऐसे हैं, जो कि गोली खा करके सोते हैं; ताकि नींद आ जाए। वहाँ के लोगों ने अपना दांपत्य जीवन व पारिवारिक जीवन समाप्त कर दिया। अकेला आदमी कितना डरावना होता है, कितना खौफनाक होता है, आप इसी से अंदाज लगा सकते हैं कि भूत जंगल में अकेला रहता है। उसका कोई खानदान वाला, कोई मित्र, कोई सगा-संबंधी नहीं होता है। सबसे बड़ा कष्ट, सबसे बड़ा त्रास उसकी जिंदगी का यही है कि वह अकेला रहता है। अमेरिका, रूस ब्रिटेन जैसे

संपन्न एवं भौतिकवादी देशों का जीवन कुछ ऐसा ही है, जहाँ आदमी अकेला है और वह किसी से जुड़ा हुआ नहीं है। वह किसी का नहीं है और उसका कोई नहीं है। इस तरह का जीवन जी करके आदमी क्लेश में फँसता हुआ चला जा रहा है और दुनिया तबाही की ओर भागती हुई चली जा रही है।

**गायत्री परिवार से हैं मानवता को बड़ी उम्मीदें**

मित्रो! आप यहाँ से उस स्थान पर चोट करने के लिए जाना, जिसने कि हमारे सारे शरीर को, हमारे मन को और हमारी भावनाओं को डगमगा दिया है। जिसने मानव की सारी आस्था को डगमगा दिया है। आपके जिम्मे जो काम सौंपा गया है, वह सामान्य काम नहीं है। वह असामान्य काम है। आप अपने आप को असामान्य व्यक्ति मानकर चलना और यह मानकर चलना कि जो उत्तरदायित्व आपको सौंपा गया है, वह सामान्य उत्तरदायित्व नहीं है। आप असामान्य उत्तरदायित्व ग्रहण करके चले हैं। आप छोटी चीज लेकर के नहीं चले हैं। आप बहुत बड़ी चीज को लेकर के चले हैं। आप उसका ध्यान रखना और उसे पूरा करने के लिए उतनी गहराई, उतनी ईमानदारी और उतनी जिम्मेदारी के साथ कदम बढ़ाना, जिससे कि जो ख्वाब हमने देखे हैं, जो सपने हमने देखे हैं, उन्हें पूरा किया जा सके। समूची मानव जाति आपसे जो उम्मीद लगाए बैठी है और आशा लगाए बैठी है, उसके बारे में उसे थोड़ा-सा भी प्रकाश मिल सके, आपके जिम्मे हम यह बहुत बड़ा काम सौंप रहे हैं। आप से लोग बहुत उम्मीद लगाए बैठे हैं।

मित्रो! आप जहाँ कहीं भी जाएँगे, वहाँ आपको शिविरों का संचालन करना पड़ेगा। शुरू के तीन दिन तो आपको वहाँ के लोगों की रूपरेखाओं और व्यवस्थाओं को समझने में लगेंगे। कार्यकर्त्ताओं को तो मालूम नहीं है। उन बेचारों पर तो हवन हावी रहता है। बस साहब! हम तो हवन करेंगे और यहाँ बस, हवन होगा। हवन के अलावा उन्हें कोई दूसरी चीज दिखाई नहीं पड़ती। दूसरी चीज उनको समझ में नहीं आती। उनको यह बताना पड़ेगा कि हवन आवश्यक नहीं है। हवन हमारा लक्ष्य नहीं है, हवन हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारा मुख्य उद्देश्य ज्ञानयज्ञ है। ज्ञान हमारा पूज्य है। हवन के माध्यम से, यज्ञ के माध्यम से हम लोगों में सत्प्रवृत्तियाँ पैदा करते हैं। इसलिए हमारे सारे के सारे क्रियाकलापों में उन सब बातों का समन्वय होना चाहिए, जिससे सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन होना संभव हो सके। इसलिए आप लोगों से कहना कि आप अपना श्रम दीजिए, समय दीजिए। आप यह कोशिश करना कि यज्ञशालाओं को बनाने के लिए कार्यकर्त्ता अपना श्रम और समय देना सीखें। परिश्रम करना सीखें, सहयोग देना सीखें।

श्रम की कीमत है, समय की कीमत है। पैसों की कीमत नहीं है। पैसों के बिना हमारे कार्य न कभी रुके हैं और न कभी रुकेंगे। इसलिए आप प्रत्येक कार्यकर्त्ता को श्रमशील और श्रमनिष्ठ होने के लिए कहना, प्रेरित करना। असली कीमत समय की है, श्रम की है। श्रद्धा की है। श्रद्धा जो है, वह समय के साथ जुड़ी हुई है, श्रम के साथ जुड़ी हुई है। इन्हीं के आधार पर हमारे कार्यक्रम चलेंगे। श्रम का जहाँ अभाव दीखेगा, वहाँ हमारा कोई

**एक दिन पानी से भरे कलश के ऊपर रखी कटोरी कलश से बोली— ''कलश! यह पक्षपात क्यों? जो भी बरतन तुम्हारे पास आता है, तुम उसको जल से भर देते हो, पर मुझ पर कोई अनुग्रह नहीं करते; जबकि मैं हमेशा तुम्हारे साथ मौजूद हूँ।''**

**कलश ने उत्तर दिया—''बहन! जो मेरे पास ग्रहण करने के लिए आता है, मैं उसे संतुष्ट करके भेजता हूँ, परंतु तुम अभिमान के साथ मेरे सिर पर चढ़ी रहती हो तो मैं तुम्हारी क्या मदद कर पाऊँगा? तुम अभिमान छोड़ो, अपनी पात्रता सिद्ध करो तो मैं तुम्हें अभी भर दूँ।'' कलश का कहा कटोरी की समझ में आ गया कि वस्तुतः पूर्णता की प्राप्ति पात्रता होने पर ही सिद्ध होती है।**

कार्यक्रम नहीं चलेगा, कोई मिशन नहीं चलेगा। कोई भजन नहीं होगा, कोई पूजन नहीं होगा।

**अमूल्य है श्रम और समय**

मित्रो! हमें आप के श्रम की और समय की बहुत आवश्यकता है। अगर हमें आप अपना श्रम और समय देना शुरू करेंगे, तो आपकी निष्ठा में बहुत हेर-फेर हो जाएगा। तब फिर आपकी निष्ठाएँ परिपक्व होंगी। जो व्यक्ति मिशन की गंभीरता को समझता है और क्रियाशीलता की गंभीरता को समझता है, उसके लिए श्रम और समय देना एक कसौटी है।

मित्रो! मिशन के कार्यों में परिजनों के परिश्रम का जितना बड़ा योगदान रहा होगा, मैं उतनी ही ज्यादा सफलता मानूँगा। आप लोगों को पसीना बहाना सिखाना और श्रेय उन्हीं लोगों को देना, जिन्होंने पसीना बहाना शुरू किया है। आप गरीब हैं तो क्या, छोटे हैं तो क्या और अमीर हैं तो क्या? पसीना किसने लगाया-बहाया, हमको श्रेय पसीने को देना है। हम सम्मान पसीने को देना चाहते हैं, श्रम को देना चाहते हैं। हम अपने आदमी की निष्ठा की परख पैसे के साथ नहीं, वरन पसीने के साथ करना चाहते हैं। इसलिए जहाँ कहीं भी जो भी कोई हो, उसमें आप यह प्रयत्न करना कि अधिक से अधिक लोगों का पसीना लग जाए और अधिक से अधिक लोगों की मेहनत लग जाए। मूलभूत सिद्धांतों को आप ध्यान रखना कि हम विचारों का परिष्कार करने चले हैं और आपने विचारों का परिष्कार करने में किस हद तक सफलता पाई, यही आपकी सफलता की कसौटी है। यही आपकी क्रियाशीलता की कसौटी है। इसके लिए आवश्यक है कि आपकी विचारशीलता, आपकी भावना, आपकी निष्ठा और आपकी कर्त्तव्यपरायणता इस हद तक होनी चाहिए जैसे कि ब्राह्मणों की और संतों की रही है।

मित्रो! आप ब्राह्मणत्व के प्रतीक हैं, आप संतत्त्व के प्रतीक हैं, आप शांतिकुंज के प्रतीक हैं। आप नवयुग निर्माण योज़ना के प्रतीक हैं। आप अपनी इन सब जिम्मेदारियों को समझना और इन सब जिम्मेदारियों को धारण करना। अगर आपने इन जिम्मेदारियों को धारण नहीं किया, तो लोग किससे अंदाज लगाएँगे। हमारे बारे में अंदाज, हमारे मिशन के बारे में अंदाज और हमारे क्रियाकलापों के बारे में, हमारी क्रियाशीलता के बारे में अंदाज लोग आपकी क्रियाशीलता के द्वारा ही लगाएँगे। आपके चरित्र से लगाएँगे। आपके स्वभाव से लगाएँगे, आपके कर्म से लगाएँगे, आपके गुणों से लगाएँगे। यह सब चीजें आपको प्रतीक मानकर लगाएँगे। इसलिए आप जहाँ कहीं भी जाएँ, फूँक-फूँककर कदम रखें। आप अपने खान-पान के संबंध में, उठने-बैठने के संबंध में, चलने-फिरने के संबंध में, बोल-चाल के संबंध में, व्यवहार के संबंध में, निर्लोभता के संबंध में, आपकी प्रयत्नशीलता और क्रियाशीलता के संबंध में, लोगों से मिलने-जुलने के संबंध में और लोगों से आत्मीयता बनाने के संबंध में, लोगों के अंदर श्रमशीलता पैदा करने के संबंध में, लोगों की भावनाओं को उभारने के संबंध में जो जिम्मेदारियाँ ले करके जा रहे हैं, उन्हें निभाने की कोशिश करना। बेटे! हम आपकी सहायता करेंगे। हमारा मिशन आपके साथ है। हम आपके साथ हैं और हमारा गुरु आपके साथ है। सफलता आपको जरूर मिलेगी।

**मिट्टी का एक कण, पानी की एक बूँद, वायु की एक लहर, अग्नि की एक चिनगारी और आकाश का एक स्फुल्लिंग—एकत्र हुए और भगवान से प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभु ! हम पाँच तत्त्व हैं, हमें सविता के जैसा प्रकाशमय व ऐश्वर्ययुक्त बना दें।" परमात्मा की वाणी सुनाई पड़ी—"भास्कर के समान तेजस्वी बनना है तो किसी से कुछ माँगो मत, वरन अपना जो कुछ भी है, वह प्राणिमात्र की सेवा में उत्सर्ग करना आरंभ कर दो, तुम्हारा तेज व ऐश्वर्य स्वयं बढ़ जाएगा।"**

**प्रामाणिकता के आधार पर मिलती है सफलता**

मित्रो! हमें छोटे-बड़े सभी आयोजनों में बहुत सफलताएँ मिलती रही हैं, जनसहयोग मिलता रहा है।

एक बार एक सहस्रकुंडीय यज्ञ में हमने तीस-चालीस हजार रुपया खरच कर डाला। हमारे पास कानी-कौड़ी भी नहीं थी, पर न जाने कहाँ से सब कुछ आता हुआ चला गया। न जाने कहाँ से व्यवस्था होती चली गई। हमको यकीन था कि कोई महाशक्ति हमारे पीछे बैठी है। इसी तरह जब हमको विदेश जाना पड़ा तो किराये-भाड़े में चालीस-पचास हजार रुपये खरच हो गए। उस समय हमारे पास रुपये-पैसों की दिक्कत थी और दूसरी बहुत-सी दिक्कतें थीं, लेकिन हम जानते थे कि हम अकेले नहीं हैं और हमारे पास बहुत जबरदस्त बैंकिंग है।

मित्रो! आप यकीन रखना कि यह सब आपके लिए भी सुरक्षित है, लेकिन शर्त केवल यही है कि आपको अपने को स्वयं सही सिद्ध करना होगा। अगर आप स्वयं सही सिद्ध न हो सके, तो ये जो बैंकिंग है, फिर आपको उसकी उम्मीद नहीं करनी चाहिए, फिर आपको यह आशा नहीं करनी चाहिए कि कहीं से कोई ऐसा समर्थन, बैंकिंग और सहायता आपको मिलेगी। अगर आप सही व्यक्ति होंगे और पूरी ईमानदारी से काम करते हुए चले जाएँगे, तो हम आपको यह आशीर्वाद दे करके विदा करते हैं कि आप यह पाएँगे कि आप समर्थ हो करके गए हैं। फिर आपके क्रियाकलापों का कोई सहयोगी न हो, ऐसी बात नहीं है। हम यहाँ से आपकी सहायता करेंगे और यहाँ से आपका समर्थन करेंगे और हम आपको आगे बढ़ाएँगे।

मित्रो! हम आपकी हर तरह से सहायता करेंगे और हर तरफ सफलता देंगे, शर्त केवल एक ही है कि आप अपने स्थान पर सही बने हुए रहें। अगर आप अपने स्थान पर सही नहीं रहेंगे, तो हमारी सहायता आपसे टक्कर खा करके वापस हमारे पास आती जाएगी, फिर आप वह काम करने में समर्थ न हो सकेंगे, जो हम आपसे कराना चाहते हैं और जिम्मेदारियाँ आप लेकर के जा रहे हैं, उसको भी आप पूरा नहीं कर सकेंगे। आप अपनी जिम्मेदारी और कर्त्तव्यों को ध्यान में रखकर जाएँ। कहाँ क्या सफलता मिली और कहाँ नहीं मिली, इस पर बहुत ध्यान मत देना। आप अपना स्वयं का कर्त्तव्य पूरा कर लेना। अपनी जिन जिम्मेदारियों की भावना को ले करके जा रहे हैं, उसे ईमानदारीपूर्वक निभाने को आप काफी मान लेना। हमारे लिए यही काफी है और आपकी जीवात्मा के संतोष के लिए भी काफी है और हमारे भगवान के लिए भी काफी है। समाज में क्या सफलता मिली, क्या नहीं मिली, हम उसका लेखा-जोखा आपसे नहीं माँगने वाले हैं। आपके कार्यक्रम में कितने आदमी आए, कितनी गुरुदक्षिणा मिली, कितना क्या मिला—यह सब जानकारी आप हमको मत भेजना। आप तो बस, हमको यह भेजना कि हमारी निष्ठा में कोई कचाई तो नहीं आ गई, कोई कमजोरी तो नहीं आ गई। आपने अपने परिश्रम और पुरुषार्थ में कोई कमी तो नहीं रहने दी। आपने लोगों के अंदर निष्ठा जमाने में कहाँ तक सफलता पाई, हमारे लिए यही पर्याप्त है।

मित्रो! वास्तव में हम आपको लोकनिष्ठा जगाने के लिए भेजते हैं। हम आपको लोगों की मनःस्थिति बदलने के लिए भेजते हैं। हम आपको बड़े-बड़े आयोजन व उत्सव संपन्न कराने के लिए नहीं भेजते हैं। बड़े उत्सव संपन्न कराना होता, तो हमने आपको कष्ट नहीं दिया होता, फिर हम मालदारों की खुशामद करते और कहते कि एक लक्षकुंडीय यज्ञ होने वाला है। उसमें एक लाख रुपये लगने वाला है। तुम पाँच हजार रुपये दे दो। अच्छा गुरुजी! मैं दे दूँगा, पर यह बताइए कि मेरे सट्टे में फायदा हो जाएगा कि नहीं? हाँ बेटे! तेरे सट्टे में फायदा हो जाएगा, तू पाँच हजार रुपये निकाल दे और कहीं से इकट्ठा करवा दे। अच्छा गुरुजी! मैं टेलीफोन किए देता हूँ, उसके यहाँ से दो हजार आ जाएगा। दूसरा व्यक्ति भी हमारा मिलने वाला है, उसके यहाँ से भी पाँच हजार आ जाएगा।

मित्रो! हमें मालदार नहीं, निष्ठावान, श्रद्धावान व्यक्ति चाहिए। हम लोगों की निष्ठा जगाते हैं। निष्ठाएँ लोगों की खतम हो गई हैं, निष्ठाएँ मर गई हैं। जो आस्तिकता मर गई है, आध्यात्मिकता मर गई, सो गई है, जो धर्म आदमी के भीतर से मर गया है, सो गया है, उसी को जगाने के लिए हम आपको भेजते हैं।

मित्रो! आप जलते हुए दीपक की तरह से जाना और दूसरों को दीपक से दीपक की तरह जलाते हुए चले जाना। यही आपसे हमारी उम्मीद है और यही मेरी शुभकामना और यही आपके सहयोग का विश्वास और आश्वासन है। इन्हीं सब चीजों के साथ बड़े प्यार के साथ और बड़ी उम्मीदों के साथ और बड़ी आशाओं के साथ मैं आपको विदा करता हूँ। आपको मैं फिर मिलूँगा। अब आपसे विदा चाहूँगा। आज की बात समाप्त।

**ॐ शान्तिः**

# प्रारंभ हुई विश्वविद्यालय में प्रवेश-प्रक्रिया

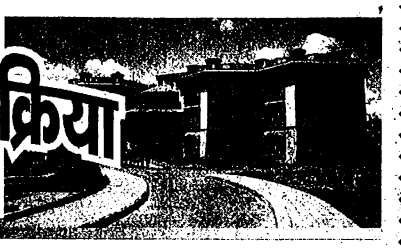

देव संस्कृति विश्वविद्यालय का आदर्श है—शिक्षा के साथ विद्या का समन्वय। इसी आदर्श के अनुरूप यहाँ पर विद्यार्थियों की जीवनचर्या और शिक्षण-प्रक्रिया का निर्माण किया गया है। हमारी संस्कृति में शिक्षा और संस्कारों का अद्‌भुत समन्वय है। शिक्षा वही, जिससे ज्ञान, बोध और समझ मिले तथा जो औचित्य और अनौचित्य की दिशा में जीवन-निर्वाह के लिए मूल्यों और आदर्शों को खोज सकने में समर्थ बनाए। संस्कार वह, जिससे विद्यार्थी की अंतश्चेतना में श्रेष्ठ गुणों का बीजारोपण हो और उसका व्यक्तित्व, उसका जीवन सतत आत्मविकास की ओर आगे बढ़ता रहे। जीवन में शिक्षा और संस्कारों का समन्वय ही विद्या है। ऋषियों ने ऐसी ही विद्या का गान किया है—**सा विद्या या विमुक्तये।**

सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्तित्व ही हमारी संस्कृति का परिचायक है। इस विश्वविद्यालय में आए प्रत्येक विद्यार्थी के लिए समग्र विकास की, एक संपूर्ण और समर्थ व्यक्तित्व को गढ़ने की यही परिभाषा है। इसीलिए यह विश्वविद्यालय सबसे अनूठा है, इसकी रीति-नीति अनूठी है। यहाँ की जीवनपद्धति को अपनाने वाले, इसमें भागीदारी करने वालों को यह परिसर जीवन की समग्रता का बोध देता है, और वह सब कुछ देता है, जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व विकास और सफलता के लिए आवश्यक है। इसकी गरिमा में, देने की सर्वोत्कृष्ट वृत्ति मौजूद है, इसलिए यहाँ देव संस्कृति है।

यह विश्वविद्यालय उन सभी प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का भावभरा आह्वान करता है, जो औरों से हटकर अपने जीवन में कुछ नया, कुछ श्रेष्ठ करना चाहते हैं। जिनके लिए शिक्षा का उद्‌देश्य महज कुछ डिग्रियाँ, सर्टिफिकेट या नौकरी प्राप्त कर लेने तक ही सीमित नहीं है, अपितु अपनी संभावनाओं का, अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करना है। राष्ट्र समाज और संस्कृति की सेवा के लिए जिनका मन उद्वेलित होता है, ऐसे ही युवाओं के लिए यह सुनहरा अवसर है। जो अभिभावक अपनी संतान को अथवा जो विद्यार्थी/युवा अपने जीवन को सही अर्थों में गढ़ना, सजाना-सँवारना चाहते हैं और देव संस्कृति के शिक्षा आदर्शों को अपनाकर गौरवशाली व्यक्तित्व के अधिकारी बनना चाहते हैं, उनके लिए यहाँ प्रवेश प्राप्त करने की अनिवार्यता है।

यहाँ प्रवेश पाने के लिए अलग-अलग विषय एवं पाठ्यक्रमों के अनुरूप पात्रता को पूरा करना होता है। अत: सर्वप्रथम आवश्यक है कि इच्छुक विद्यार्थी को यहाँ चलने वाले विभिन्न पाठ्यक्रमों की संपूर्ण जानकारी हो, जिससे अपनी रुचि अनुसार विषय का चयन कर सकें। दूसरा पहलू यह है कि अपने इच्छित विषय में प्रवेश पाने के लिए किन-किन अर्हताओं को पूरा करना आवश्यक है—यह पता हो। इस उद्‌देश्य से अब प्रारंभ होने वाले नए शैक्षणिक वर्ष—२०१४ में प्रवेश हेतु इच्छुक अभ्यर्थियों के लिए पाठ्यक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

## प्रवेश-प्रक्रिया—

लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर। शैक्षणिक सत्र (२०१४) में प्रवेश हेतु पाठ्यक्रम इस प्रकार हैं—

**(I) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम—** (अवधि २ वर्ष)

(अनिवार्य अर्हता-स्नातक परीक्षा में न्यूनतम ५०% अंक)

**M.A./M.Sc. नैदानिक मनोविज्ञान**—इस पाठ्यक्रम में पाश्चात्य मनोचिकित्सा विधियों के साथ भारतीय मनोविज्ञान एवं चिकित्सा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक शिक्षण प्रदान किया जाता है। इसे पढ़कर विद्यार्थी एक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक एवं मनश्चिकित्सक के रूप में अपना कैरियर सँवार सकते हैं। साथ ही समाज सेवा के क्षेत्र में भी स्वतंत्र रूप में अथवा किसी संस्था के साथ मिलकर अमूल्य योगदान दे सकते हैं।

**M.A. व्यावहारिक योग एवं मानव उत्कर्ष—** इस पाठ्यक्रम में योग के सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पक्षों का समावेश है। योग विज्ञान में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र— सभी के सुखी-समुन्नत और स्वस्थ रहने के सूत्र मौजूद हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से आज समाज में योग की

अत्यंत उपयोगिता है। कैरियर की दृष्टि से विद्यार्थी के लिए इसमें अपार संभावनाएँ हैं। कुशल योग प्रशिक्षकों एवं योग चिकित्सकों की आज देश-विदेश में अत्यंत माँग है।

**M.A./M.Sc. मानव चेतना एवं योग विज्ञान**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य भारतीय योग पद्धतियों के दार्शनिक व व्यावहारिक पक्षों का ज्ञान कराना तथा विद्यार्थी को योग के साथ-साथ भारतीय वैकल्पिक चिकित्सा का प्रशिक्षण देना है। इसे पढ़कर योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा के क्षेत्र में अनेकों संभावनाएँ तलाशी जा सकती हैं।

**M.Sc. योग विज्ञान एवं समग्र सवास्थ्य**—यह पाठ्यक्रम योग के उच्चस्तरीय व्यावहारिक सिद्धांतों एवं इसके चिकित्सकीय पहलुओं का ज्ञान कराता है। इसमें शारीरिक, मानसिक व आत्मिक स्वास्थ्य को सुधारने की योग तकनीकों का समावेश है। कैरियर की दृष्टि से इसे पढ़कर विद्यार्थी योग चिकित्सक अथवा योग चिकित्सा के क्षेत्र में उच्चस्तरीय अनुसंधानों में अपनी पात्रता का नियोजन कर सकता है।

**M.A. पत्रकारिता एवं जनसंचार**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य समाज एवं राष्ट्र में संस्कृतिनिष्ठ मूल्यों पर आधारित निष्पक्ष एवं रचनात्मक पत्रकारिता की स्थापना करना है। इस दृष्टि से इसमें पत्रकारिता के सभी पहलुओं और जनसंचार माध्यमों का सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक शिक्षण होता है। होनहार एवं कुशल पत्रकार की इस क्षेत्र में हमेशा माँग है।

**M.Sc. कंप्यूटर साइंस**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य कंप्यूटिंग साइंस के सिद्धांतों की जानकारी देना तथा प्रायोगिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से विभिन्न सॉफ्टवेयर-हार्डवेयर सिस्टम से अवगत कराना है। साथ ही विद्यार्थी को कंप्यूटर से संबंधित समस्याओं के निवारण हेतु भी प्रशिक्षत किया जाता है। कैरियर की दृष्टि से छात्र इसे पढ़कर प्रोग्राम डेवलपमेन्ट, प्रोजेक्ट मेनेजमेन्ट और सॉफ्टवेयर टेस्टिंग के क्षेत्र में अपना भविष्य सँवार सकते हैं।

**M.Sc. पर्यावरण विज्ञान**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थी को स्थानीय, क्षेत्रीय तथा वैश्विक स्तर की पर्यावरणीय समस्याओं और उनके निदान से अवगत कराना है। इस हेतु विद्यार्थियों को पर्यावरणीय घटकों के वैज्ञानिक विश्लेषण, पर्यावरण प्रभाव के आकलन एवं प्रबंधन तंत्र की विस्तृत जानकारी दी जाती है। इसे पढ़कर विद्यार्थी शिक्षण, शोध, औद्योगिक प्रबंधन एवं परामर्श जैसे क्षेत्रों में अपना कैरियर बना सकता है।

**M.A. भारतीय इतिहास एवं संस्कृति**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य भारतीय इतिहास की विस्तृत जानकारी देना तथा भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धांतों एवं विशेषताओं से अवगत कराना है। साथ में आधुनिक समय में भारतीय संस्कृति के महत्त्व एवं विश्व में इसकी अग्रणी भूमिका को भी स्पष्ट करना है। कैरियर की दृष्टि से यह प्रतियोगी परीक्षाओं में तो सफलता दिलाने वाला तथा शिक्षण, सांस्कृतिक क्षेत्र एवं पर्यटन के क्षेत्र में भी रोजगार के अवसर प्रदान करता है।

**M.A. पर्यटन प्रबंधन**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य पर्यटन के क्षेत्र में व्यावसायिक कुशलता को विकसित करना तथा सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पर्यटन के क्षेत्र में विस्तृत जानकारी देते हुए नई संभावनाओं को खोजने का प्रशिक्षण देना है। कैरियर की दृष्टि से इसमें शिक्षण, शोध एवं पर्यटन के विविध क्षेत्रों में अपरिमित संभावनाएँ मौजूद हैं।

**M.A. व्यावहारिक शिक्षा**—इस पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य शिक्षा के मूल स्वरूप की जानकारी देते हुए समाज एवं संस्कृति के साथ उसके अंत:संबंधों का ज्ञान कराना है। साथ ही विद्यार्थी को शिक्षण के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पहलुओं में भी प्रशिक्षित करना है। इसे पढ़कर विद्यार्थी शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में भविष्य सँवार सकते हैं।

**M.A. संस्कृत**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थी को संस्कृत वाङ्मय का परिचय कराते हुये उसमें निहित वेद, पुराण, धर्म, संस्कृति, दर्शन, साहित्य आदि के स्वरूप का ज्ञान कराना है। इसके साथ ही संस्कृत के सामाजिक महत्त्व और विशेषताओं का भी शिक्षण कराया जाता है। इसे पढ़कर विद्यार्थी प्रतियोगी परीक्षाओं में एवं शिक्षण-अध्यापन-लेखन आदि क्षेत्रों में अपना भविष्य सँवार सकते हैं।

**(II) स्नातक पाठ्यक्रम**—(अवधि, ३ वर्ष)

**प्रवेश-प्रक्रिया**—

लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर।

**अनिवार्य अर्हता**—किसी मान्यता प्राप्त माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से १०+२ पाठ्यक्रम के अनुसार न्यूनतम ५०% अंक से उत्तीर्ण। बी.सी.ए.एवं बी.एस-सी. कंप्यूटर साइंस विषय में अध्ययन हेतु १०+२ पाठ्यक्रम में गणित विषय

तथा बी.एस-सी.पर्यावरण विज्ञान विषय के अध्ययन के लिए जीव विज्ञान विषय का होना अनिवार्य है।

**B.A. स्नातक**—इस पाठ्यक्रम में अध्ययन हेतु ऐच्छिक विषय हैं—योग, मनोविज्ञान, अँगरेजी, पर्यटन, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, शिक्षाशास्त्र, संस्कृत साहित्य एवं हिंदी साहित्य।

**B.Sc. स्नातक**—इस पाठ्यक्रम के ऐच्छिक विषय हैं—योग विज्ञान एवं मानव चेतना, मनोविज्ञान, कंप्यूटर, गणित, पर्यावरण।

(ऐच्छिक विषयों में किन्हीं तीन विषयों का चयन करना होता है)

**B.C.A. स्नातक**—(तीन वर्ष) यह पाठ्यक्रम कंप्यूटर के क्षेत्र में व्यावसायिक एवं तकनीकी कौशल प्रदान करता है।

**B.Ed. स्नातक प्रशिक्षण**—(अवधि १ वर्ष) इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य एक आदर्श शिक्षक तैयार करना है। इसमें शिक्षण की वैज्ञानिक एवं तकनीकी विधाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह विद्यार्थी को शिक्षक बनने के अवसर प्रदान करता है। इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु स्नातक उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

**(III) स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम**—(अवधि १ वर्ष)

**अर्हता**—स्नातक परीक्षा न्यूतम ५० प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण।

**PGD डिप्लोमा—मानव चेतना एवं योग चिकित्सा**—यह पाठ्यक्रम योग के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों की जानकारी देता है। इसमें विद्यार्थी को योग चिकित्सा के साथ प्राकृतिक चिकित्सा एवं मर्म चिकित्सा का भी अध्ययन कराया जाता है। इसे पढ़कर एक योग चिकित्सक अथवा प्रशिक्षक के रूप में भविष्य सँवारा जा सकता है।

**PGD डिप्लोमा—पत्रकारिता एवं जनसंचार**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य एक सच्ची एवं आदर्श पत्रकारिता का प्रतिनिधित्व करने वाले कर्मठ पत्रकार तैयार करना है। कैरियर की दृष्टि से यह अत्यंत उपयोगी पाठ्यक्रम है। एक पत्रकार के रूप में भविष्य बनाया जा सकता है।

**(IV) डिप्लोमा पाठ्यक्रम**—(अवधि १ व २ वर्ष)

**अर्हता**—१०+२ उत्तीर्ण। एनिमेशन के पाठ्यक्रम हेतु अँगरेजी माध्यम होना अनिवार्य।

**डिप्लोमा— विजुअल इफेक्टस: कंपोजिटिंग**—(अवधि १ वर्ष) इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य कंप्यूटर द्वारा कंपोजिटिंग की बेसिक और एडवांस तकनीकों का शिक्षण कराना है। साथ ही फिल्म और टेलीविजन व्यवसाय में विजुअल इफेक्टस का प्रभावी उपयोग सिखाया जाता है। इसे पढ़कर विद्यार्थी एनिमेशन के क्षेत्र में ऊँचे मुकाम हासिल कर सकता है।

**डिप्लोमा—विजुअल इफेक्ट्स : ३डी कंप्यूटर ग्राफिक्स**—(अवधि २ वर्ष) इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थी को विजुअल इफेक्ट्स के साथ एडवांस ३डी कंप्यूटर ग्राफिक्स में दक्ष कराना है। आज के समय में फिल्म एवं टेलीविजन व्यवसाय में इसकी अत्यंत माँग है। ३डी के इस क्षेत्र में एक सुनहला भविष्य मौजूद है।

**डिप्लोमा—स्व-उद्यमिता एवं ग्राम्य विकास**—(अवधि १ वर्ष) इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थी को गाँव की समस्याओं, आवश्यकताओं, परिस्थिति तथा संसाधनों का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता है तथा तकनीकी क्षमता का विकास कर अनेक तरह के ग्रामीण रोजगार हेतु तैयार किया जाता है। इसे पढ़कर विद्यार्थी ग्राम प्रबंधन एवं रोजगार के द्वारा अपना भविष्य सँवार सकते हैं।

**आराधना का अर्थ है—विराट ब्रह्म की, विशाल विश्व की, विश्वमानव की सेवा-साधना में समुचित उत्साह और तत्परता रखना। इसी परमार्थपरायणता को ईश्वर की आराधना कहते हैं।**

*—परमपूज्य गुरुदेव*

**(V) प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम**—(अवधि ६ माह)

**अर्हता**—किसी भी मान्यताप्राप्त माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा १०+२ पाठ्यक्रम के अनुसार उत्तीर्ण।

**प्रमाणपत्र—समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आयुर्वेद, योग, यज्ञ चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा जैसी प्राचीन वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक शिक्षण प्रदान करना है।

विद्यार्थी इसे पढ़कर वैकल्पिक चिकित्सा के क्षेत्र में अपना भविष्य बना सकते हैं।

**प्रमाणपत्र—धर्मविज्ञान**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य धर्म के प्राचीन एवं पारंपरिक स्वरूप की जानकारी देना तथा धर्म के व्यावहारिक, प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक स्वरूप को समझाना है। इसे पढ़कर विद्यार्थी एक ऊर्जावान धर्मप्रचारक, धर्मशिक्षक के रूप में अपना कैरियर सँवार सकते हैं, साथ ही समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति की सेवा में तत्पर हो सकते हैं।

**प्रमाणपत्र—योग विज्ञान एवं वैकल्पिक चिकित्सा**—इस पाठ्यक्रम में योग विज्ञान के व्यावहारिक एवं क्रियात्मक पक्षों का अध्ययन तथा योग चिकित्सा के विभिन्न आयामों का अभ्यास कराया जाता है। इसे पढ़कर योग चिकित्सक के रूप में कैरियर बनाया जा सकता है।

**प्रमाणपत्र—जल संसाधन संरक्षण एवं प्रबंधन**—इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य जल तत्त्व के महत्त्व, उपयोग एवं संकट का विस्तृत ज्ञान कराया जाना है। जल पर्यावरण संरक्षण का महत्त्वपूर्ण घटक होने के साथ ही जीवन का आधार भी है। इस दृष्टि से विद्यार्थियों को जल संकट एवं जल संरक्षण का तकनीकी ज्ञान भी कराया जाता है। इसे पढ़कर विद्यार्थी एक वैज्ञानिक की भूमिका में जल एवं पर्यावरण संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

उक्त सभी पाठ्यक्रमों की यह संक्षिप्त जानकारी है। विस्तृत जानकारी के लिए विश्वविद्यालय की वेबसाइट www.dsvv.ac.in पर लॉग ऑन कर सकते हैं। साथ ही प्रवेश फार्म को डाउनलोड भी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त फार्म सहित विवरण पुस्तिका रु० २००/ देकर विश्वविद्यालय से प्राप्त की जा सकती है अथवा रु० ५०/ अतिरिक्त डाक व्यय देकर डाक द्वारा मँगवा सकते हैं।

पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने परिचित क्षेत्र में प्रतिभावान विद्यार्थियों को इस विश्वविद्यालय की विशिष्टता समझाएँ तथा यहाँ आने के लिए प्रेरित करें, ताकि उनकी प्रतिभा को महान आदर्शों से जोड़कर उन्हें एक महामानव के रूप में गढ़ा जा सके। यहाँ की प्रवेश-परीक्षा को विद्यार्थी प्रतिभाशीलता और भावनाशीलता की कसौटी मानकर अपने मूल्यांकन हेतु सहर्ष प्रस्तुत होंगे, ऐसी कामना है।

**देशमान्य गोपाल कृष्ण गोखले बाल्यकाल में बहुत गरीब थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा किसी प्रकार पूर्ण हो गई थी। जब कॉलेज की खरचीली पढ़ाई का प्रश्न सामने आया तो गोखले चिंतित हो गए। तब उनकी भाभी ने अपने आभूषण बेचकर उनकी फीस भरी।**

**उनके बड़े भाई गोविंद राव अपने पंद्रह रुपये के मासिक वेतन में से सात रुपये गोखले जी को भेज देते थे और शेष आठ रुपयों से अपना खरच चलाते थे। शिक्षा पूर्ण होने पर गोखले जी को पैंतीस रुपये मासिक की नौकरी मिल गई। बड़े भाई के उपकार से उनका रोम-रोम कृतज्ञ था, इसलिए वे ग्यारह रुपये अपने पास रखकर चौबीस रुपये प्रतिमाह अपने भाई को भेज देते थे। उनके भाई ने उन्हें ऐसा करने से बहुत मना किया तो वे बोले—"भाई साहब! यह रुपयों का बदला रुपयों से नहीं है, बल्कि ममता का उत्तर श्रद्धा से है।" यह सुनकर उनके भाई ने उन्हें गले लगा लिया।**

# इस संवत्सर में हमारे लिए निर्धारित आवश्यक आध्यात्मिक कर्त्तव्य

## विलक्षण है यह वर्ष और यह संवत्सर

'प्लवंग' नाम का नवसंवत्सर प्रारंभ हो चुका है। इसी के साथ नवरात्र-साधना भी प्रारंभ होकर अपनी पूर्णता की ओर अग्रसर है। अपने देव परिवार के परिजनों के लिए नवरात्र-साधना हमेशा से विशेष रही है। इस बार तो इसमें समूह साधना की विशिष्टता भी जुड़ चुकी है। इसलिए इस बार परिजनों में साधना के लिए उमंग, उल्लास व उत्साह कुछ ज्यादा ही दिखाई दे रहा है। आने वाले पत्रों एवं व्यक्तिगत संपर्क से यह बात बार-बार स्पष्ट होती रहती है। वैसे भी विशेषज्ञों का कहना है कि यह वर्ष २०१४ एवं वर्तमान संवत्सर प्लवंग, दोनों ही कुछ खास हैं और आने वाले शुभ परिवर्तनों की ओर इंगित करते हैं। सन् १९४७ के अँगरेजी कैलेंडर से इस साल का कैलेंडर हूबहू मिलता है। संयोग की बात देखिए इस वर्ष का पंचांग भी आने वाले नवसंवत्सर से काफी मिलता-जुलता है।

सन् १९४७ की भाँति नए पंचांग में भी ५३ बुधवार पड़ेंगे जो कि बीच के वर्षों में कभी नहीं पड़े। संवत् के राजा और मंत्री, दोनों पदों पर चंद्रमा आसीन हैं। परिणाम स्वरूप वर्तमान संवत्सर देश के लिए विशेष शुभ है, ऐसा ज्योतिर्विदों का मानना है। इस संदर्भ में ज्ञातव्य यह भी है कि ६० संवत् होते हैं, जो एक के बाद एक आते रहते हैं। ६० वर्ष बाद उसी नाम का संवत् आता है, जो ६० वर्ष पहले था। इन ६० संवतों में २०-२० संवत् अनादि देव ब्रह्मा, विष्णु और शिव के पास हैं। पिछले २० वर्षों से भगवान विष्णु के संवत् चल रहे थे, लेकिन ३१ मार्च से प्रारंभ हो चुका नवसंवत्सर २०७१ भगवान शिव के संवतों की शुरुआत करेगा। इसी के साथ शिव विंशति प्रारंभ हो गई है। ज्योतिर्विद कहते हैं कि वर्ष २०१४ में सन् १९४७ की कई समानताएँ हैं। अनेक मुहूर्त भी उसी प्रकार पड़ रहे हैं, जैसे कि सन् १९४७ में पड़े थे।

## भवबंधनों से पार कराने वाला संवत्सर

नवसंवत्सर प्लवंग के राजा व मंत्री चंद्रमा हैं। चंद्रमा प्रेम व अमृत के देवता हैं। साथ ही इन्हें धारण करने वाले भगवान महेश्वर महाकाल हैं, जो युग-परिवर्तन की प्रक्रिया के सूत्रसंचालक, सूत्रधार व नियामक हैं। वैसे भी प्लवंग शब्द का भावार्थ पार होने या पार उतारने से है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह वर्ष और यह संवत्सर देशवासियों एवं विश्व-वसुधा के मानव समुदाय को दुःख, पीड़ा व परेशानियों से पार कराकर एक नई व शुभ शुरुआत करेगा। समूह साधना इस प्रक्रिया में अपनी विशेष भूमिका निबाहेगी। गायत्री मंत्र का तत्त्वदर्शन भी सामूहिक उत्कर्ष, सामूहिक अभ्युदय व साथ-साथ प्रकाश-पथ पर गमन के लिए प्रेरित करता है।

## साधना की आधारभूत शक्ति है संकल्प

गायत्री-साधना हम सभी वर्षों से करते आ रहे हैं। इतने वर्षों से हम सभी का अनुभव एवं अपने मार्गदर्शक परमपूज्य गुरुदेव का चिंतन हम सबको यही चेताता रहा है कि साधना की आधारभूत शक्ति संकल्प है। यह मानवीय चेतना की सबसे प्रचंड और सबसे अद्भुत ऊर्जा है। निरर्थक तो कल्पनाएँ और कामनाएँ होती हैं। संकल्प की सिद्धि में संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। विवेकपूर्वक किए गए सुनियोजित निश्चय जब प्रतिज्ञापूर्वक किए जाने की मनःस्थिति का रूप धारण करते हैं तो उन्हें संकल्प कहते हैं। सूर्य जब उदय होता है तो उसका प्रकाश कोई रोक नहीं सकता। गायत्रीसाधक जब अपने प्रचंड संकल्प की सारी शक्ति को किसी लक्ष्य विशेष पर केंद्रित कर देते हैं, ऐसी दशा में आने वाले अवरोध मात्र आँख-मिचौली खेलने आते हैं। संकल्पपूर्ति या प्रगति-पथ को रोके रह सकने की क्षमता उनमें नहीं होती।

यह सच है कि संकल्पवान साधकों ने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उचित मूल्य चुकाया है, लेकिन साथ ही इससे जुड़ा हुआ एक सच और भी है कि वे हमेशा सफल ही हुए हैं। इस सत्य को विगत घटनाक्रमों में, इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ पाया जा सकता है। हम सबकी सामूहिक साधना के सत्संकल्पों

की शक्ति ही नवनिर्माण की आधारभूत क्षमता बनेगी। आध्यात्मिक शक्ति यही है। तपस्वियों की प्राण-ऊर्जा इसी को कहते हैं। गायत्रीसाधक का ब्रह्मवर्चस् यही है। जब दुष्ट-दुराग्रही तक अपनी दुरभिसंधियों को पूरा कर लेते हैं, तब कोई कारण नहीं कि निष्ठावान गायत्रीसाधक अपने प्रचंड महासंकल्प को पूरा करने में समर्थ न हो सकें।

## सामूहिक साधना के समवेत संकल्प

सामूहिक साधना के समवेत संकल्प का परिणाम अथवा यों कहें कि इसका चमत्कारी सत्परिणाम हमें इसी वर्ष, इसी संवत्सर में प्रत्यक्ष सिद्ध करना है। अपनी समर्थ साधना से प्रामाणित करना है कि आध्यात्मिक चेतना की अद्‌भुत क्षमता का सृजन-प्रयोजनों में उपयोग हो सके तो उसके कितने बड़े सत्परिणाम सामने आ सकते हैं। अपने देव परिवार के निष्ठावान साधकों के सत्संकल्पों को उभारना इस नवसंवत्सर में अपना प्रधान कार्यक्रम है। त्रिपदा गायत्री के अनुरूप तीन न्यूनतम कार्यक्रम निर्धारित किए गए हैं, जो आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के तीनों क्षेत्रों को समान रूप से प्रभावित करते हैं।

गायत्री महामंत्र में उच्चारित किया जाने वाला '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' सर्वसमर्थ परमेश्वर की त्रिलोकव्यापी सर्वव्यापकता को स्पष्ट करता है। परमपूज्य गुरुदेव ने इसे पंचाक्षरी गायत्री भी कहा है। इसका अपना विचारदर्शन व तत्त्वदर्शन भी है, जिसे प्रत्येक गायत्रीसाधक को सुनिश्चित रूप से आत्मसात् करना ही चाहिए। गायत्री मंत्र के आराध्य देवता सविता, गायत्री महाशक्ति का परमस्रोत परमेश्वर सर्वव्यापी हैं।

## सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय

सृष्टि के कण-कण में, प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में, पदार्थ में, चेतना में समान रूप से उनकी उपस्थिति है। जो इस उपस्थिति को अपनी अनुभूति बना लेता है, वही सच्चा गायत्रीसाधक है। उसी की साधना फलित होती है, उसी के संकल्प अपना चमत्कारी सत्परिणाम दिखाते हैं। ऐसी अनुभूति को आत्मसात् करने वाला साधक कभी भी संकीर्ण स्वार्थपरता से ग्रसित नहीं हो सकता। गायत्रीसाधक वही है, जिसके संकल्प, मंतव्य, गंतव्य सदा ही व्यापक होते हैं। **सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय** यही गायत्री के निष्ठावान साधक के व्यक्तित्व की सही, सम्यक एवं सटीक परिभाषा है। यही गायत्री साधक के संकल्प की आधारभूमि है।

## गायत्री महामंत्र का प्रथम चरण है आत्मनिर्माण

इसके प्रश्चात प्रारंभ होता है—गायत्री महामंत्र का प्रथम चरण—**तत्सवितुर्वरेण्यं**, जो आत्मनिर्माण का परिचय व पर्याय है। उन सविता देवता का निर्धारण यही है—तत्सवितुर्वरेण्यं के अर्थ का बोध कराना व गायत्रीसाधक के संकल्प को पूर्ण कराना। इस प्रथम चरण में आत्मनिर्माण के लिए, जीवन के तमस् निवारण के लिए असीम ऊर्जा है। आत्मनिर्माण के लिए नियमित उपासना, प्रातः उठते ही उत्कृष्ट दिनचर्या का निर्धारण, रात्रि को सोते समय दिनभर के कार्यों का पर्यवेक्षण, जीवन के आदि व अंत का तत्त्वचिंतन, दैनिक गतिविधियों पर कड़ी दृष्टि रखना और उनमें अव्यवस्था और अवांछनीयता का समावेश न होने देना। यही गायत्री मंत्र के प्रथम चरण तत्सवितुर्वरेण्यं की सम्यक व्याख्या एवं सार्थक क्रियान्वयन है। इसका आरंभ कितने ही छोटे रूप में क्यों न किया जाए, पर इस निर्धारण को क्रियान्वित अवश्य करना चाहिए।

## गायत्री महामंत्र का द्वितीय चरण है परिवार निर्माण

गायत्री मंत्र का द्वितीय चरण—**भर्गो देवस्य धीमहि**, परमात्मा के तेज को धारण करने की परिभाषा है। इसमें पुण्य व तप के अर्जन का संकेत व संदेश निहित है। सकारात्मक अर्जन व उसका सृजनात्मक वितरण ही तो परिवार निर्माण का आधार है। इस परिवार निर्माण के लिए घरों में पूजाकक्ष की स्थापना, नमन-वंदन का प्रचलन, सामूहिक आरती-प्रार्थना, कथा-कहानी के छोटे-मोटे क्रिया-कृत्यों के सहारे परमात्मा के कृपापूर्ण तेज को धारण करने की व्यवस्था परिवार में की जानी चाहिए।

घरों में स्वाध्याय की परंपरा नियमित रूप से चलती रहे, इसके लिए घरेलू ज्ञानमंदिरों का, स्वाध्याय साहित्य का, पारिवारिक पुस्तकालयों का संस्थापन होना चाहिए। साथ ही घरों में श्रमशीलता, सहकारिता, सुव्यवस्था, शालीनता व मितव्ययिता की प्रवृत्तियों को पनपाने के लिए इन पारिवारिक पंचशील का प्रयोग यथासाध्य किया जाना चाहिए। हमारे परिवार व्यक्तित्व निर्माण की प्रयोगशाला के रूप में सक्रिय रहें, तभी समझा जाए कि गायत्री महामंत्र के द्वितीय चरण का अर्थ समझा व निभाया जा रहा है। इसका शुभारंभ इसी समय होना चाहिए। हमारे घर-परिवार शीघ्र से अतिशीघ्र प्रज्ञामंदिर के रूप में विकसित हों, यही प्रयास हमारे द्वारा निरंतर होते रहना चाहिए।

## गायत्री महामंत्र का तृतीय चरण है समाज निर्माण

गायत्री मंत्र का तृतीय चरण **धियो यो नः प्रचोदयात्**, अर्थात प्रकाश-पथ पर, सन्मार्ग पर हम सभी साथ-साथ चलें, यही समाज निर्माण का प्रमुख आधार है। जनमानस का परिष्कार इसका व्यावहारिक स्वरूप है। ज्ञानयज्ञ का, विचारक्रांति का समूचा सरंजाम इसी के लिए जुटाया गया है। इसके लिए प्रत्येक परिजन को बढ़-चढ़कर योगदान-अनुदान प्रस्तुत करना चाहिए। ज्ञानघटों की स्थापना और झोला पुस्तकालय का प्रचलन इसी उद्देश्य के लिए किया गया है कि इस अनुदान की बूँद-बूँद से नवयुग की प्रेरणा जन-जन तक पहुँच सके। अब इस दिशा में हमारे प्रयास बढ़ने चाहिए। समय व साधनों की कितनी अधिक मात्रा इस पुण्यप्रयोजन के लिए नियोजित की जा सकती है, इस पर तत्परतापूर्वक विचार करना चाहिए। आलस व विलास को त्याग देने पर अपना हर परिजन अधिक अंशदान-अनुदान महाकाल के चरणों में प्रस्तुत कर सकता है। इक्कीसवीं सदी नवनिर्माण की डगर पर तेजी से बढ़ रही है। इसके लिए जितना संभव सहयोग हो सके, उतना अधिक धन व समय लगाने वाली उदारता का परिचय अनिवार्य रूप से देना चाहिए। गायत्रीसाधक की कसौटी यही है। आत्मिक प्रगति की परीक्षा, लोक-मंगल के लिए उदारता के अनुपात पर अवलंबित रहती है।

## समूह साधना वर्ष के अनिवार्य आध्यात्मिक कर्त्तव्य

सामूहिक साधना वर्ष के ये तीन अनिवार्य आध्यात्मिक कर्त्तव्य हैं। इन्हें साधना संकल्प के रूप में निभाना चाहिए। अपनी वर्तमान परिस्थितियों में जितना अधिक सुव्यवस्थित व सुनिश्चित रूप में कर सकना संभव हो उसके लिए संकल्प लेना चाहिए। मात्र सोचते रहने से कोई बात बनने वाली नहीं है। निकृष्टता तो संचित कुसंस्कारों के सहारे अनायास ही सिर पर आ चढ़ती है, पर उत्कृष्टता की दिशा में ऊँचा उठने के लिए तो साधना का पराक्रमी प्रचंड संकल्प चाहिए ही। जो संकल्प किया जाए उसे मन में न रखकर अपने संपर्क क्षेत्र को अवगत करा दिया जाए, घोषित कर दिया जाए। इससे उसकी पूर्ति करना प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है, पूरा न हो पाने पर उपहास होता है और सफलता पाने पर आत्मगौरव का लाभ मिलता है। इसलिए अपने द्वारा किए गए सत्संकल्पों का उद्घोष करने की परंपरा का निर्वाह हमें भी करना चाहिए।

## अखण्ड ज्योति के पाठक इतना तो करें ही

सन् २०१४ एवं वर्तमान संवत्सर प्लवंग सामूहिक साधना वर्ष है। इसे साधना के साथ संकल्प वर्ष के रूप में भी अपनाया व मनाया जाना चाहिए। इस वर्ष सामूहिक साधना के साथ आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के लिए कुछ साहसिक कदम बढ़ाने के संकल्प किए जाने चाहिए। जो संकल्प किए जाएँ, उनकी पूर्ति के लिए योजनाबद्ध कार्यपद्धति बनाई जानी चाहिए। संकल्प छोटे हों या बड़े, पर उन्हें पूरा करके ही रहेंगे, इसके लिए उत्साह, साहस और प्रयास, तीनों प्राणवान तत्त्वों का समुचित समावेश रहना चाहिए।

अन्न, जल एवं वायु का त्रिविध समन्वय संतुलित आहार की आवश्यकता पूरी करता है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण की तीनों धाराओं का समावेश रहना चाहिए। इन तीनों में एक भी तथ्य ऐसा नहीं है, जिसे छोड़ा जा सके। यही नहीं इन तीनों में से अकेला कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके सहारे समग्र आत्मिक प्रगति का लक्ष्य पूरा हो सके। अखण्ड ज्योति के पाठकों को इस वर्ष व इस संवत्सर में आत्मिक, पारिवारिक व सामाजिक क्षेत्र में आध्यात्मिक व आदर्शवादी प्रगति के लिए कुछ अधिक करने की योजना बनानी चाहिए। उसका निर्धारण इन्हीं दिनों साधना संकल्प के रूप में अपने संपर्क क्षेत्र के साथ शांतिकुंज एवं अखण्ड ज्योति के संपादक को विदित करा देना चाहिए।

यह वर्ष एवं यह नवीन संवत्सर नए शुभारंभ के लिए है। इसमें अनेकों महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने हैं। इसे समय-समय पर राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में देखा जा सकेगा। महाकाल की यह योजना अति विस्तृत एवं व्यापक है। इसके लिए आध्यात्मिक ऊर्जा भी उतनी ही सघन चाहिए। इसे हम सबको मिलकर ही पूरा करना है। हममें से हरेक पाठक-परिजन को महाकाल का सेवक-सहचर होने का दायित्व निभाना है। यह दायित्व हमें निजी तौर पर एवं सामूहिक तौर पर पूरा करना है। जिनके मन में ऐसा उत्साह स्फुरित हो, वे अपने निर्धारण अतिशीघ्र साधना संकल्प के रूप में परिपक्व व प्रगाढ़ कर लें।

# शुभ सौंदर्य-बोध

तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर यह नील गगन।
जितने सुंदर रवि-शशि के मुख, हैं जितने सुंदर तारागण॥
तन के जेवर से सुंदर है, मन की सुंदरता का गहना।
शुचितामय जिसका जीवन हो, उसकी सुंदरता क्या कहना॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितनी सुंदर ऋषि की चितवन।
जितनी सुंदर भगवद्गीता, जितनी सुंदर है रामायन॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर यह नील गगन॥
सुंदरता वो जो हो उदार, सुंदरता वो जो करे प्यार।
जग की सुंदरता के खातिर, जो जीती बाजी जाय हार॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर खुद आकर्षण।
जितना सुंदर यमुना का तट, है जितना सुंदर नंदन वन॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर यह नील गगन॥
कोई देखे इन आँखों से, ये सारा जग ही सुंदर है।
जग जिसे खोजता है बाहर, वो मोती दिल के अंदर है॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितने सुंदर हैं देव चरण।
जितना सुंदर देवालय है, पूजा-अर्चन-आरती-हवन॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर यह नील गगन॥
दिल में हो घाव नहीं सुंदर, बदले का भाव नहीं सुंदर।
आँगन को बाँटें दीवारें, ऐसा अलगाव नहीं सुंदर॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर खुद अनुशासन।
सम आदर, वृद्धों की सेवा, है जितना सुंदर अपनापन॥
तुम इतने सुंदर लगते हो, जितना सुंदर यह नील गगन॥

**–सृष्टिकुमार**